एक और सीता

आलमशाह खान

८९३.३१
आल/ए

एक श्रौर सीता

एक और सीता

"पुस्तकालय कोष्ठक शिक्षा विभाग
उत्तर प्रदेश के सौजन्य से"

आलमशाह ख़ान

पंचशील प्रकाशन
जयपुर-302003

मूल्य : बीस रुपये

© आलमशाह ख़ान

प्रथम संस्करण : 1985

प्रकाशक
पंचशील प्रकाशन
फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता,
जयपुर-302003

मुद्रक : शांति मुद्रणालय, दिल्ली-32

EAK AUR SITA By Aalamshah Khan
(Historical Short Stories) Rs. 20.00

अनुक्रम

मेहंदी रचा ताजमहल	9
आनेवाले कल में जीते हुए	19
कांटों नहाई ओस	31
चीर हरण के बाद	36
उजाले की प्यास	46
सांस भइ कोयला	51
सूली पर सिन्दूर	61
रण-राग	66
कुंआरा सफर	80
एक और सीता	97

एक और सीता

मेहंदी रचा ताजमहल

आख-पलक तक ढरकाए आंचल की झीनी ओट में मुस्कान-रेख आंक कर बहू ने ससुर जी को निहारा, उनके राख-राख चेहरे पर उभरी झेंप की झालर को अनदेखा जताने के लिए उसने अपने आपको चूल्हे-चौके में उलझाए रखने की जुगत तो जोड़ी पर वे जान ही गए कि बहू सब परच-परख गई है।

अपने नन्हे की उंगली थामे, उसे पैयां-पैयां चलाते हुए, उनका बेटा सुने को अनसुना करके भी जो अटपटा सामने आया है, उसकी सही-सही परख पा गया है; अब्बू को इसका पूरा यकीन हो गया है। अपनी भावज की ओट बैठी आंखों-आंखों में लाज-हया के डोरे समेटने में लगी उनकी बिनब्याही होशियार बेटी भी सब बांच-समझ गई है। अपने अब्बू का कड़वा चिट्ठा चौड़ा-चौपट जो हो गया है आज ! अब्बू को इसका भी पूरा भान हो गया है।

अब्बू जैसे जलती रेत पर नंगे पैर खड़े हैं और वह अजानी-अनदेखी पुरखिन एकाएक आगे आ उभर कर अपनी रग-रग में रमी पुरानी आग को ठंडा करने के लिए भर-भर मुट्ठी रेत अब्बू के आपे पर फेंक रही है और वे सांप-छछूंदर की बेढब गत में आ गए हैं।

"ओ फारसी-किरस्तानी लिखे-पढ़े मुंसी जी; बेटा-बेटी और पोता-बहू से फली-फूली तुम्हारी बंस-बेल को तो देख लिया मैंने···तनि अपनी मानो, मुंसानी से भी तो मिलाओ, देखूं तो कैसी-कित्ती रूपरसी रही होगी, जो उस लाड़-लड़ी ने तुम्हें भरमां अपने आंचल से अटका लिया, और भुला-बिसरवा दिए वो 'खेले' जो तब तुमने मुझसे—मुझ जैसियों से खेले···"

"वो नहीं रही···उसकी कब्र पे तो हाथ-हाथ भर ऊंची घास खड़ी है आज। कैसे बोल रही···ऊंच-नीच तो समझ···आ कहां से गई तू गड़े मुर्दे

उखाड़ने ?"

"मुर्दे उखाड़ने नहीं, भूत जगाने आई हूं···पूरे दो जुग बाद···तुमने सोचा, दो बीघा जमीन पे माथा मार, जो-ज्वारी खाकर मर-खप गई होगी दुलारी, दुल्लन···मरी ही समझो, पे मरने से पेले तुम्हारी झलक लेने दम भर को तुम्हें फिर देखने, हेतु आ गई बस !" बोलते-बोलते उसकी आंखें डबडबा आईं और गला रुंध गया—अजीब और बड़ा अटपट था यह सब हमारे सामने। एक अनजान सूरत बुढ़िया एकदम अनसुनी बोली में अब्बू के लत्ते लेते हुए उनके जवानी भरे दिनों की बखिया उधेड़े चली जा रही थी और अब्बू अपने बेटा-बेटी-बहू के सामने पानी-पानी हुए जा रहे थे।

अपनी पलकों की झरन को छिपाने के लिए वे दीवानखाने की तरफ मुड़ने लगे कि बुढ़िया ने उन्हें बांह धर रोका और फिर हांक लगाई, "मुंसी जी ! मैं तो तुम्हें याद करती रही, तुम्हारी चाह की आंच में पिघलती-जलती रही तुम्हारी दी दो बीघा-धरती को आंसू-पसीने से सींचती रही, रीती गोद मोटा-झोटा खाती-पहनती रही···इसी आस-बिसास में कि एक दिन तो तुम आओगे···हरजाई, तुम नहीं आए···मैं ही आई हूं···सीता मैया ने तो कुल चौदह बरस का बनवास झेला था, मैं तो अट्ठाईस बरस का बनवास भुगत के भी बही हूं···सोचो तनि···ना राम, ना लछमन···अकेले-पनका अकेला बनबास, कित्ते-कित्ते राकस-रावण ना आए होंगे···कलेजे में नेह का उजड़ा नीड़ ले, मरने से पहले तुम्हें देखने-कोसने आ गई, तुम्हारे डेरे।"

"अब चुप भी करेगी अपनी रामायन या···" अब्बू ने उसे बरजते हुए धमक दिखाई। पर वह भला कब चुप होनेवाली थी ? बोली, "नेह-नाते से गरजते ! अब रूखे-सूखे क्यूं बरसो हो, मैंने जो सहा-जिया, तुम सुन तो लो···मैंने जो दिया तुम्हें, उसे तो तुम क्या लौटाओगे—गया वो तो सेंत-मेंत में···पे तुमने जो मुझे दिया था, वो जमीन का टुकड़ा, उसे मैं तुम्हें लौटाने आई हूं···ये लो उसके पट्टे-परवाने···मेरी नेह-लाज-देह-देन का मोल तुमने मिट्टी से आंका···लो, वो सब लो···" कहते-कहते बुढ़िया हांफने लगी और आंचल में खुंसा कागज का एक बोसीदा बंडल अब्बू की तरफ फेंक दिया। फिर थमी और मेरी आंखों में देखती हुई बोली, "तुम

क्या जानो मासूमो, के मैं तुम्हारी क्या और कौन हूं। जिससे नेह-नाता जोड़ा, जब उसी ने बिसार दिया तो...'' बोल पूरे भी नहीं हो पाए थे कि वह अपने कांपते पैरों पर वहीं धसक गई और हाथ-पैर फैला कर अचेत-सी हो गई। हम घबराए। अब्बू चकराए।

''मैं डॉक्टर को लेकर आता हूं।'' कहकर मैं बाहर जाने को हुआ तो अब्बू की बैठी हुई आवाज ने रोका, ''डाक्टर नहीं, बैद जी; डॉक्टर की दवा यह लेगी नहीं।'' भाभी को बुढ़िया के चेहरे पर पानी के छींटे देते देखा तो बहना बोली, ''तनि पानी की चार बूंदें चुआ दो भाभी, इनके मुंह में। तबीयत संभल जाएगी।''

''नहीं-नहीं, पानी जो डाल दिया तुमने इसके मुंह में तो ये और होश खो बैठेगी...दम ही दे देगी।'' अब्बू की बात सुनी तो भाभी के हाथ में कटोरे का पानी कांप कर रह गया। तभी बैद जी आए, नाड़ी-धड़कन को पढ़-समझ कर बोले, ''ताप-घास में आ गई हैं मां जी। काढ़ा दिए देते हैं। ठीक हो जाएंगी।''

बैद जी रुखसत हुए। बेटी को टुकुर-टुकुर अपना मुंह जोहते पाया तो अब्बू बोले, ''ये बिरले बिरेहमन की विकट बेटी है, किसी के घर का, खास करके तुरक-पठान के घर का पानी नहीं पीने की।'' अब्बू कह रहे थे। तभी बुढ़िया ने आंख टमटमाई। अब्बू जैसे उसे ही सुनाते हुए आगे बोले, ''जाओ बिट्टो, पंडतानी बुआ को बुला लाओ। उनसे कहिओ; अपने घड़े का अछूता जल भी लोटा भर कर लेती आएं—जल्दी।''

बिट्टो उठ खड़ी हो, उसके पहले ही बुढ़िया के बोल आगे, ''हमारे थैले में है गंगा-जल की सीसिया, नहीं पीने की किसी के यहां का पानी।'' इतना बोल वह उठने को हुई तो बिट्टो ने सहारा देकर बिठा दिया। उसकी भावज पंखा झलने लगी। सभी को अपनी हाजिरी-टहल में खड़ा देख बुढ़िया बोली, ''बहू-बिटिया और दूजे भी सब मेरी चाकरी में जुटे हैं, क्या लगूं हूं मैं तुम्हारी जो यों सब हलकान हो रहे मेरी खातिर...बेटी भी...'' इतना कहकर एक मार करती हुई नजर उसने अब्बू पर फेंकी।

''अपनेपन को किसी रिश्ते का नाम देना लाजमी तो नहीं सास जी!''

''सास जी सरीखा नाता जोड़ के भी अपनेपन का नाम धरने की

बात से मुकर रही ये हमारी स्यानी बहू। सुनो हो मुंसी जी ?"

"अरे, ये सब करेंगे। पे तू मुर्गे की डेढ़ टांग पे ना पहले जम सकी थी मेरे संग और ना अब चल सकेगी इनके साथ।" अब्बू ने बीते दिनों की गर्द झाड़ते हुए जैसे उसे कुछ याद दिलाया।

"हां, सही, वो मेरा नेम-व्रत-संस्कार-धरम, जो कहो, जस-का तस है। आज भी। इसे तो मैं छोड़ने की नहीं मरते दम तक।" बात का शूल समझ उसने हूल दिया।

"मैंने तो तभी तुझे कह दिया था, के मैं शहंशाह अकबर नहीं जो 'जोधाबाई' बना कर तुझे अपने महल-दोमहलों में रख सकूं···"

"तो अब नौबत यहां तक आन पहुंची के मुंसी जी अपना नाम-हैसियत मुझे बताने लगे···बेटे-बहू के सामने अपना चिठ्ठा खुलवा के रहोगे, मुझसे ?" वह कुड़कुड़ाई तो अब्बू चुप हो गए।

"सास जी, जब आ ही गईं, तो रहो यहीं। वैसे भी अम्मां के ना रहने से हवेली के आंगन-चौबारे खाने दौड़े हैं, तुम्हारी सूरत में पोता-पोती दादी का हिया-जिया देख लेंगे और हम···" बहू कह गई।

"किस उजियारे कुल की लछमी लाई जे मुंसानी···ये बहू तो मुझे ही अपने आंचल में भर रही।" इतना कहकर उसने बहू का माथा चूम लिया और बिट्टो का हाथ अपने हाथ में रखकर टिचकारी दे नन्हे पोते को अपने पास बुलाने लगी। उसे यूं नेह-पगा देख बहू बोली, "चलो, अम्मा के बैठके में ही जमा दें तुम्हें।"

"सौ साल जिए तेरा सुहाग लाड़ो···पे मैं कुल-बैरन अपनी मां की कोख में ही सात मास से आगे नहीं जम पाई तो अब यहां-कहां, कैसे जम पाऊंगी···मुंसी जी जाने हैं, खूब, मेरा माजना···मेरी मरजाद···इसीलिए तो मेरे आंचल में दो कट्टा मिट्टी भर कर बिसार गए मुझे। पे मैं कब बिसार पाई इन्हें···आज आखिरी टेम, आंख भर देखने के लिए जाने कैसे तो आ गई यहां, तो तुम सब मेरी गोद में आ ढले···पर मैं अब जाऊंगी, मुझे तो अब जाना ही है बेटे! मुझे पहुंचा आओ रेलगाड़ी तक।"

"हां, जी, इन्हें अम्मी जी के बैठके में ही पहुंचा आओ।" सबने उसे

अम्मा के कमरे में ला बिठाया।

"दुलहिन, मेरी सफेदी में धूल गेर रही ये दुलारी, पे मैं चाहूं तो सबसे मुकर नहीं सकता। जो भेद बिट्टो की मां ठीक-से नहीं जान पाई, आज वो जग-जाना हो सामने उघड़ा खड़ा है···तुम लजाती रही हो अब तक। आज तुम्हारा ससुर शर्मिंदा है। तुम्हारे सामने। क्या कहूं, कैसे कहूं ···" अब्बू नन्हे को गोद में लिए उसके बालों से उलझते हुए कह रहे थे।

"दुलारी, बड़ी पक्की और जबरी बिरेहमन है, तुम्हें खून दे देगी अपना, पर तुम्हारे हाथ का पानी नही पिएगी। बरत-उपवास धारेगी तुम्हारे हेतु, अपने तीज-त्योहार भी पालेगी, परसाद-पान तुम्हें सब देगी, पे तुम्हारे शबरात-ईद पे बना कुछ ना लेगी·· मेरी जानमाज में इसने गुल-बूटे काढ़ दिए, ये मेरे हाथ के चुने फूल इसने अपने ठाकुर जी को नहीं चढ़ाए। इसी लिए तो···अब तुमने इसे अपनी अम्मा की ठौर बिठा अपनी सास के पास बिठा दिया; वो सब ठीक। पे वो रह कैसे पाएगी हमारे साथ? दुलारी, हमारी सांसों में जी सकती है, लेकिन हमारे बर्तन-भाडों में नहीं खा सकती।"

अब्बू कह ही रहे थे कि वह बैठके से तभी बाहर आई और बोली, "हां, हां; मेरा नेम-धरम सब बता दो बहू को। वो पहले ही खूब समझू है। लो, मैं ही सब कह-बोल दूं इसे। बेटी! देह-डील दिया किसी को मैंने, अपना धरम-नेह नहीं दिया। आत्मा तो अछूती रखी और अब भी नहीं देने की अपना धरम तो। मेरी मोटी समझ आज भी फेर में हैं। तुम्हारी अजान होवे, मैं मौन सीस नवाऊं, मेरे ठाकुर जी का शंख बजे, घंटी टुनटुनाए; तुम इसे सत्कार लो। तुम अपने ढंग से रस-बस लो, मुझे अपनी रहनि रहने दो। नेह-न्याव में फिर फरक कहां?"

बहू ने सब सुना, समझा और बोली, "नन्हे! दादी जी से कहो, जैसे चाहें रहें, बसें। घर उनका ही है···"

"अब ये इस घर में अलग से अपनी रसोई-परेंडी जमाएगी···सब इससे सध जाएगा इस उमिर में?" अब्बू बोले।

"अरे, तो मैं कौन-सी पड़ी-पातुरी हूं जो जम रही तुम्हारी देहरी-

ड्योढ़ी···" वह तीखी बर्र होकर बोली ।

"इस रस्सी का बल नहीं जानेवाला !" अब्बू कह गए ।

"अरे ! तो सब तुम्हें अपनी रस्सी से नहीं बांधा, अब तुम्हें उ
बांधूंगी ? जो यूं कड़ुआ रहे···मरद हो, इससे लुगाई का सब, धरम-क
भी, लें लो···"

"नन्हे ! दादी मां से कहो, कोई कुछ नहीं लेगा उनका । एक पंडिता
रख छोड़ेंगे उनकी सेवा-टहल के लिए खान-पान उनका सब हमसे दूर अ
अलग होगा । पर यों नहीं होगा ये सब···हमें प्यार-दुलार देंगी वो···अ
मीठी मार-मनुहार भी ।" बहू बोली और उनका हाथ थामे अपने साथ
जाती हुई कहती रही, "हरद्वार-काशी जायें वो; जिनका कोई सगा-वा
ना हो । सास जी के हम सब—आंख पलक पे रहेंगी वो हमारे ।" बुढ़ि
ने सुना और बहू से लिपट कर सिसकियां भरने लगी ।

पूरे गांव में चर्चा—मुंशी जी की, किसी जमाने की कोई चहेत
बुढ़िया दो जुग बाद उनके घर आई है—और उसने उनकी हवेली के
चौबारे में अलग चूल्हा-चौका जमा कर वहीं अपनी गृहस्थी बसाई
मुंशी जी पे देह-नेह का नाता रखकर भी उसने उनके हाथ का पहले
कभी खाया और ना अब खाती है, मुंशी जी की बहू तो यों रीझी है अ
नई सास पर के पूछो मत···उसके लिए नए बर्तन-भांडे मंगवाए हैं श
से । और उसकी टहल में रख लिया है बैजू पंडित की विधवा को । पं
ताइन आज कुएं पर धातु के नए कलसे को चमकाते हुए दीखीं तो
चली—

"सुना है, पूरी भगतिन है ।"

"और नी तो ! देव-जगनी बेला से पेले नींद निबेड़ जागे है ।
न्हावे-धोवे, आगे जो पूजा में बैठे तो सूरज किरन पेड़ की फुनगियों पे च
तभी आंख खोले है वो ।" पंडिताइन ने बताया ।

"और खान-पान ?"

"वो भी सब अलग । मुटठी भर दाल-भात या फिर दो फुलके मैं
सेंक-पका दूं । फिर छुट्टी ।"

"दिन-भर क्या करती रेवे है वो ?"

"अरे ! करना धरना क्या है उसे। माला के मन के घुमावे, आंख मूंदे या फेर मुंसी जी के पोता-पोती के माथे पर हाथ फेरा करे है…"

दिन यों ढरक गए जैसे केल-पात पर ठहरे जल-कण। बिट्टो के ब्याह की तारीख के दिन टूटते गए और दुलारी मां उसके दहेज के लिए मुंशियाइन के हाथों सहेजे-समेटे साल-दुपट्टों पर गोटा-किनारी टांकने में जुट गई। आंखों पर चश्मा चढ़ाए दिन-दिन भर उसका ये वो जोड़ा संभालती-सजाती वह रंग राती हो गई कि जैसे अपनी कोखजनी को ही ब्याह रही हो, अपनी पूजापाटी से निपटकर, "बहू, ये देख, वो कर, ये रख, वो हटा, ये ला, वो दे", करती रही और ऐन विदा की बेला में अपनी पेटी में से एक लाल रेशम की धुंधियाई दिपदिपवाली साड़ी निकालकर बोली, "बहू ! मेरी जिया ने मेरे सुहाग के लिए इसे तब सहेजा था—वो सब तो बदा नहीं …अपनी आखरी सांसों में किसी के हाथ इसे मेरे पास पठा दिया था… बिट्टो के सुहाग के जोड़ों के संग इसे धर दूं ?" बहू कुछ बोले, इससे पहले ही पास खड़ी बिट्टो ने सब सुना-गुना और आगे बढ़कर उससे वह साड़ी लेकर उसे अपने आंखों-माथे पर चढ़ाया और फिर उसे भाभी के हाथों में थमा, हट गई ।

आंसू डाल, हिये-जिये से लगा और उसकी मांग चूम कर उसने अपनी अंगिया में अंसी डिबिया निकाली । उसे खोला और उसमें भरे सिंदूर में यों ही-सी उंगली रखी और फिर बिट्टो की मांग को उससे छू भर दिया। और उसे यों विदा कर मुंशी जी की भीगी आंख पलक देख उनके पास जा खडी हुई, और फिर दरवाजे की चौखट पर हलके हलके थाप देने लगी, जैसे उन्हें दिलासा दे रही हो, मुंशी जी ने उसे भीगी-पथरायी देखा तो उन्हें लगा, जैसे बिट्टो की मां ही सामने खड़ी अपनी बेटी को विदा कर धीरज ढूंढ़ रही है ।

ईद का चांद दिखा है, पहली ईद पीहर में मनाने के लिए बिट्टो आई है, नन्हे-मिन्नी ऊधम उठाए हैं, बहू उन्हें बरज रही पर वे हैं कि दादी

के सिर चढ़े हैं, "दादी। फुलझड़ी मंगाओ, हम गुब्बारे लेंगे, सेवैयां खाएंगे दादी, मेरी सैंडिल अच्छी है कि मिन्नी की चप्पल···दादी, मेरी सफारी अच्छी है कि मिन्नी की शलवार-जंपर ?"

"सब अच्छे हैं, और सबसे अच्छे नन्हें और मिन्नी !"

"दादी ने पहले हमें अच्छा कहा—" ले—लू-लू-लू···ऽ···ऽ मिन्नी, पहले हम अच्छे।"

"दादी ! भाई अच्छा और हम ?" मिन्नी ने मुंह फुलाकर कहा और दादी से दूर छिटक गई।

"नी, रे ! मिन्नी रानी तो बहुत अच्छी है," इतना कहकर उसने उसे अपनी बांहों में ले लिया।

"ले, ले, दादी ने हमें बहुत अच्छा कहा···नन्हे अच्छे···हम बहुत अच्छे।"

"नहीं रे बेटे मेरे, तुम दोनों भोत-भोत अच्छे हो।"

"अब भई, तुम दोनों दादी की गोद में ही घुमड़े रहोगे के इनके हाथों में मेहंदी भी रचाने दोगे।" इतना कहकर बहू मेहंदी भरा कटोरा लेकर बैठ गयी।

"हां, अम्मा ! लाओ, एक हाथ इधर दो—हम भी रचाएं मेहंदी आपके।" बिट्टो भी पास खिसक आयी।

"बावलियो ! चढ़ा है तुम्हारे सिर आज कुछ ! अब बूढ़ी मुर्दा-मुरझाई हथेलियों पर मैं मेहंदी रचवाऊं तुमसे ! लाओ हाथ अपने···बिट्टो, बहू —मैं अपने पीहर, भांत की मेहंदी रचाऊंगी तुम्हारे।" उसने कहा।

"बुढ़ापे-बड़ापे की खूब चलाई आपने ! अभी तो अल्लाह रखे, सौ-साल बने रहें अब्बू। सुहाग का सगुन तो तुम्हें आज करना ही है, सास जी ?" बहू बोली और उसके तलवे को साध, उस पर मेहंदी चुपड़ दी।

"करो क्या हो, छोकरियो ! यों मेहंदी में बसाकर इस बुढ़िया को नवेली दुलहिन बना रही !"

"सास जी को आज ससुर जी की बैठके में भेजेंगे—ईद जो है ना।" बहू चुहल करती हुई आंखों-आंखों में बिट्टो से कुछ कहकर शरमा गई। बुढ़िया तो यह सब लख-गुनकर ऐसी छुई-मुई हुई कि उसके चेहरे की

झुर्रियों में मेहंदी की लाली खिल उठी। तभी नन्हे सामने आया और बोला, "दादी की एक हथेली पर हम मेहंदी रचाएंगे ? हमें ड्राइंग में सबसे ज्यादा नम्बर मिले हैं।" और एक तीखी तीली ले वह दादी की हथेली पर मेहंदी मांडने में जुट गया।

खडखड़ा के किवाड़ उघड़े। मुंशी जी ने किताब परे कर आंख चश्मे से ऊपर उठाई तो पाया, सामने लाल लहंगे-साड़ी में गहने-गुहने धार लाज-बसी दुलारी खड़ी है। दो युग पहले की उनकी चहेती दुलारी, लाड़भरी, मानभरी। वह मसनद से उठे, उसके पास आये और उसे बांहों में बटोरते हुए बोले, "मैंने क्या दिया, मुझसे तो तेरी सौतन के जाए—जनमें अच्छे जो···"

"उस भोली भागवान बहना को सौत कहकर क्यूं छीनो हो मुझसे मेरे बहु-बेटे-बेटी-पोता-पोती, मुंसी जी ! मीठा त्योहार है, आज तो मीठा बोलते ?" वह उनकी बांहों के घेरे में घुलती हुई बोली। फिर अपनी बंद मुट्ठी उनके आगे कर कहा, "बूझो तो भला ? इसमें क्या है ?" मुंशी जी ने अपनी आंखों में उभरी पहलेवाली खिल्लाड़ और चमक-चंचल दुलारी को देखा और उसकी बंद मुट्ठी को अपनी अंजुरी में भर उस पर अपने होंठ रख दिए। वह थोड़ी देर गुम-ठगी-सी खड़ी रही, फिर बोली, "तुम भला क्या बूझोगे ? तुमने मुझे माटी दी···तुम्हारे पोते ने मुझे क्या दिया ? लो, देखो।" इतना कहकर उसने अपनी बन्द मुट्ठी उनके सामने खोल दी।

मुंशी जी ने देखा, उसकी हथेली पर रचा मेहंदी का ताजमहल··· खूब खुला खिला; गहरा रचा बसा। पल-छिन के लिए वह भीतर ही भीतर हिल गए और फिर उन्होंने उसकी हथेली पर रचे ताजमहल को चूम लिया —एक बार नहीं, कई-कई बार। अब उसने अपनी हथेली समेट ली और बोली, "नन्हे ने अपने दादा के अन्याय को कैसे जाना ?···अजब है ना ? ···पे मुंशी जी, तुमने उसे अपने होठों की सही देकर एक बार जैसे मेरा फिर सब कुछ हर लिया···सारा क्लेस-कलुस सारा ताप-संताप। मुंशी जी! अब मैं बेखटके चैन की मौत मरूंगी, बिना हारे पछताये, मौज की मौत

—मेहंदी रची गैल पर चलती हुई मैं अपने लीलाधारी में लीन हो जाऊंगी तुमसे नहीं तो तुम्हारे जायों से मैंने सब कुछ पा लिया···सब कुछ।" वह झरती आंख-पलक कह गई। अब मुंशी जी की आंख में उसके आंसू थे और उसकी हथेली पर मेहंदी रचे ताजमहल पर मुंशी जी के आंसू झिलमिला रहे थे।

आने वाले कल में जीते हुए

बंधन में जो मुक्ति है और मुक्ति में जो बन्धन है, उसे मैंने खूब जाना और जिया है। आज मैं सूरज से बंधी नहीं हूं तो मुक्त नहीं हूं। कल जब मैं उससे बंध जाऊंगी तो मुक्त हो जाऊंगी। बिन बंधे का नाता बहुत नाजुक होता है। बिन बंधे जुड़नेवाला जानता रहता है कि थोड़ी सी जकड़न दिखाई दी कि बांधी गई बात टूट जाएगी, पिंजरे के बाहर का पंछी उड़ जाएगा। इसलिए पंछी की अनुहार-मनुहार करके ही; उस तक अपनी पहुँच-पहचान बनाये रखो। लेकिन पंछी जब बंध जाएगा, पिंजरे मे आ जाएगा तो फिर कैसी मान-मनुहार ! दोनों पंछी जब पिंजरे में हैं, तो फिर लगी-पगी बात क्यों न कह दी जाए ? दोनों पिंजरे के भीतर हैं, एक दूसरे को छोड़कर तो वे जा सकते नहीं, और फिर दोनों का साथ प्रेम-अनुराग स्नेह-समर्पण का नहीं; विवशता और दीनता का होगा। जो आखिर टूटकर रहेगा—भंग होगा ही।

आज सूरज से जब मैं विधिवत् बंधी नहीं हूं; उनकी अखरनेवाली बात को भी पी जाती हूं। उनके रूखेपन को, अपनी अनुहार भरी दुलार से सींच एक गहरे आलिंगन में ढालकर, हरा कर देती हूं। उनकी दी गई चुभन को सहलाकर मुस्कान पर झेल लेती हूं। उनके कटाक्ष को अपने कलेजे की कोर से लगा कर उन्हें निहाल कर देती हूं। झटक दिये गये अपने हाथो से उन्हें बाँह में भर लेती हूं। उनकी करनी को मैं उनकी महर मानकर; उन्हें लुभाये रखती हूं। क्यों ? मेरे भीतर ही भीतर भय जो है; भय, संशय जो मुझे सदैव भान कराता रहता है कि मेरे किसी रुख-रहिन रखाव-रचाव और व्यवहार-बिहार से वितृष्ण होकर पिंजरे के बाहर का यह पंछी कहीं फुर्र न हो जाए। आकाश से उसकी पहचान तो है ही, वह उड़ान की दुनिया में कहीं फिर न लौट

जाये—आकाश को फिर अपने डैनों से बांधने की जुगत से न जुड़ जाये।

मेरे इस आचरण को सूरज समर्पण समझते हैं। अपनी हर चोट पर मुझे मुस्कराता हुआ देखकर मुझ पर रीझे चले जाते हैं। मेरी सहन-क्षमता को अर्पण समझते हैं। किन्तु जब मैं कल; उनसे विधिवत् बंध जाऊंगी, उनके नाम का सिन्दूर अपनी मांग में भर लूंगी और एक सुहाग रेखा बना लूंगी तब ? क्या मैं उस रेखा को पढ़ने में अब फिर चूक कर जाऊँगी ? उस सिदूरी-रेखा का प्रत्येक बिंदु उसका रंग-रचाव मुझे क्या यह अनुभूति नहीं देगा कि सूरज मुझसे अब बंध गए हैं—वह पिंजरे में हैं मेरे साथ। तब भी में क्या उनके कटाक्ष, उनकी दी हुई कसक, चोट, ठेस, व्यंग्य और वक्र मुस्कान की वक्रता को लक्षित करके भी तब क्या मैं वैसी ही समर्पित, स्नेहमयी, त्यागशीला और कामायनी बनी रह सकूंगी; जैसी कि आज हूं ? नहीं, तब फिर उस पिंजरे में वैसी ही चोंच लड़ी चख-चख नहीं होगी जैसी निहाल के पिता के साथ होती रहती थी। वैसी ही आकांक्षा नहीं जागेगी कि इस पिंजरे से मुक्ति मिले ? कब इसका द्वार खुला मिले और कब खुले आकाश से जा लगूं ?

बंधन से बनाने वाला मुक्ति अधिकार बंधन को ही तोड़ देगा, तो फिर क्यों बंधा जाये ?

मैं यह जानती हूं कि आज सूरज कभी मेरे लगाव में आए ठंडेपन को इस उस हीले से सहला कर भरमा देते हैं। मेरे वितृष्ण में उठी विलो-किनी को नयन-कटाक्ष कहकर चूम लेते हैं। मेरे खिचाव को अनजाना कर के मुझे खींच लेते हैं। मेरे खिचे आंचल को ठंडी छांव कहकर उसमें मुंह छिपा लेते हैं। क्यों ? क्योंकि मैं उनसे विधिवत बंधी नहीं हूं। अपने चाहते उनसे जुड़ी भर हूं। उन्हें कहीं लगता है कि अगर आज मेरे ठंडेपन को, अनमनेपन को, बेगानगी को, उपेक्षा को, उकेरा गया तो यह जुड़ना उखड़ जाएगा। पिंजरे के बाहर का पंछी उड़ जाएगा। पर मैं जब कल अग्नि की साक्षी न सही, कानून की साक्षी में ही उनसे बंध जाऊँगी, तब मेरे आंचल की सरसराहट में; उनकी छांव में, उन्हें साड़ी की कीमत का ख्याल नहीं आयेगा ? और···फिर एक पिंजरे में बंद दो पक्षी एक दूसरे के पसरे हुए पंखों से अपना रास्ता रुंधा हुआ पायेंगे तो क्या फिर दोनों पिंजरे के खुलने

की प्रतीक्षा करते हुए जीने पर विवश न होंगे ? और फिर क्या तयशुदा रास्तों पर फिर से चलने की मजबूरी सामने नहीं होगी ? जिस परिस्थिति से भाग कर सूरज के पास मैं आयी थी उसी परिस्थिति में फिर से निर्वासित न हो जाऊँगी ? उसी परिवेश में सूरज फिर नही धकिया जायेंगे ? और फिर जिन्दगी वैसी ही ऊबाऊ, नीरस और निस्सार नहीं होगी, जैसी तब थी। क्या मेरे लिए इतना बदलाव ही काफी होगा कि पहले मैं 'उस पुरुष' के साथ जो जीवन जी रही थी, ठीक वैसा ही जीवन 'इस पुरुष' के साथ जीती हुई मौत की चौखट से जा लगूं ?

या फिर सूरज को भी उसी तयशुदा रास्ते पर धकेल दूं जिसको लाँघकर उन्होंने मेरी पलकों के साये में अपनी मंजिल के निशान पहचाने थे। 'नयना' के साथ जो जीवन उनकी मजबूरी था वही मजबूर जीवन उनका 'किरन' के साथ बन जाए। वैसा हो गया तो फिर जो यह सब हुआ है वह निरर्थक हो जाएगा। तब तो वेटे को बाप से अलग करने और माँ को बेटे से जुदा करने की जो सूरत आज बन आई है, वह मोक्ष के लिए आहुति न होकर परिवर्तन के लिए बलि जैसी बात ही बनकर रह जाएगी। आए दिन की चख-चख और शीत-युद्ध की तपन से भरा हुआ घर जब अनू और निहाल के सामने फिर मुंह बाए खड़ा होगा तो, उनका क्या बनेगा ?

सूरज का बेटा जब पहले अपनी माँ से संत्रस्त था और अब दूसरी माँ से पीड़ित होगा तो उसमें भला क्या हित है ? फिर तो हम दोनों ने, अपनी संतान के भविष्य को संवारने के लिए, बंधे जीवन से कटकर एक स्वस्थ जीवन की जो कल्पना की है, वह सब एक ढकोसला ही सिद्ध होगी ना ? उसमें सार फिर कहाँ ?

इसलिए मुझे सूरज से विधिवत् विवाह रचाने से पहले सोचना होगा और···

कल देर रात गए तक लिखे गए अपनी डायरी के पत्रों को वह एक बार, दो बार, तीन बार जब पढ़े जा रही थी कि तभी कॉलबेल थरथरा कर रह गई। इधर इन दिनों वॉल्टेज इतना कम रहता है कि बेल पूरी तरह टन्ना भी नहीं सकती, वह आंचल सहेज कर उठी। आंख पलक पर

हाथ छुआकर उसने ज्योंही दरवाजा खोला; सुना—
—"बेरंग चिट्ठी है—तीस पैसे"
—"छोड़ो हमें नहीं लेना।" उसके उखड़े बोल थे।
डाकिया घूमा कि उसके बोल फूटे—
—कहाँ से आई है ? किसकी है ?
"—दिल्ली से--पर छोड़िए। जिस रास्ते जाना नहीं···" डाकिया नया था। कम उम्र भी। किरन ने उसे आंखों से बरजा—"ठहरो···पैसे लाई···" वह पलटी। घड़ी ने टंकारा दिया और उसने तीन सिक्के उसके हाथ में धरकर लिफाफा ले लिया। सूरज का पत्र था। "ये भी एक ही हैं। यूं पैसे के पर लगा देंगे; पर पत्र पर पूरे टिकिट नहीं लगायेंगे।" पत्र खोलते हुए उसने सोचा—"कहती हूं सूरज, कोई काम कभी पूरा करोगे ? तो बना बनाया जवाब चपेक देंगे—किरन अपना जीवन ही अधूरा है, अधूरा ही बीत रहा है तो भला और काम कब पूरे होंगे, अपने से ?" अब किरन उससे क्या कहे भला। पत्र के माथे पर सुर्खी में लिखा है—'मोस्ट अर्जेन्ट' और करीब-करीब सभी पंक्तियां रेखांकित हैं। डाक टिकिट फिर भी आधे ही लगाए हैं—शायद इसलिए कि पत्र मेरे हाथों में पहुंचे ही पहुंचे।

सूरज की किरन !

सोचते हुए जीना और जीते हुए सोचना। कितना अंतर है दोनों में ? तीन साल तक हम सोचते-सोचते ही जीते रहे आज वह घड़ी आयी है जब मैं बिना सोचे हुए जीना चाहता हूं।

मीत ! अब हम जीते हुए सोचने की स्थिति में आ पहुँचे हैं। सोच-सोचकर जीना तो मर-मर कर जैसा है। मैं अब अपने लिए, आज के लिए जीना चाहता हूं। शर्तों के साथ जीने का हौसला अब मुझमें नहीं।

जिस घड़ी को पाने के लिए हमारी सांसें सलीब पर लटकी रहीं, अब वह सलीब टूटकर चकनाचूर हो गई है। अब हम एक दूसरे की सांसों के धागे की गांठों को खोलकर एक दूसरे के लिए जीने को आजाद हैं। आज तीन बरस से मैं तुम्हें पाने को जीता रहा, अब मैं तुम्हें पाकर, जीतकर, सौ बरस तक जीना चाहता हूं।

मैं मान लूं कि तुमने मुझे सब दिया है, सर्वभावेन समर्पण। कुछ भी

सहेज कर नहीं रखा कल के लिए, अपने लिए। मुझे तो लगता है, एक दाम्पत्य जीवन जीकर भी तुमने उस 'पुरुष' को कुछ नहीं दिया। सब कुछ सहेजे रखा और मेरे मन प्राण में उसे उंडेल दिया। तुम मुझ पर रीझ ही नहीं, रीत भी गयीं सब दे डाला मुझे, पर आज तक जो तुमने मुझे दिया है, उसे मैं ढोल बजाकर उजागर करना चाहता हूं। सरे आम एलान करना चाहता हूं कि अन्यथा परिणिता एवं पुत्रवती 'किरन' को मैं अपने सम मनी स्कत पवित्रता से ग्रहण कर रहा हूं। अब मैं अपनी इस भावना को समाज और विधि की मुद्रा से अंकित करना चाहता हूं।

मीत! मैं बहुत प्रफुल्लित हूं। मेरे उल्लास की ऊर्मियां तल छू हैं। तुम्हें खोज रही हैं। मैं तुम्हें पाने और छूने के लिए अगले सप्ताह, आज से ठीक सात दिन बाद, उदयपुर पहुंच रहा हूं। बस।

अपने से सूरज को बांधो 'किरन'

'सूरज'

किरन ने पत्र पढ़ा। बार-बार पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते उजली सुबह जलते हुए दिन का भेस धर धुंआ-धुंआ होकर मटयाली शाम में ढल गई। उजली आशाएं बंधन का बाना पहनकर जीवन को धुंआ-धुंआ कर गई तो? 'तो' का प्रश्न पिशाच बनकर 'किरन' की कल्पना के जीवन को लील जाने के लिए मुंह बायें खड़ा था। उसने ट्यूब लाइट को ऑन किया। फीकी दिप्-दिप् कसमसाई पर वह जागी नहीं। बिजली का धक्का पूरे जोर पर न हो तो टिम-टिम की छू-छा तो होती है, उजाला नहीं होता। हालांकि उजाले का सामान पूरा होता है। कनक्शन भी, ट्यूब भी, तो स्विच भी-ऑन करने वाले हाथ भी।

मैं हूं, सूरज है; सब सामान है—सुविधा है, पर अंदर की बिजली का पूरा आग्रह, बल-तेज नहीं हुआ तो? दिप्…दिप् से लम्बा, बहुत लम्बा, जीवन का अजाना रास्ता कैसे कटेगा? मुक्ति बाँधती है, बंधन मुक्त करता है, बंधन राहों को समानान्तर रेखाओं में ढालता है, मैं सूरज के साथ समानान्तर रेखाओं से बने पथ पर जीवन की यात्रा नहीं करना चाहती। मैं तो उनके साथ एकले पथ पर एक होकर दौड़ना चाहती हूं।

हाथों में हाथ लिए, आगे पीछे नहीं; बराबर-बराबर। और यह सब कुछ बंधकर नहीं होगा, मुक्त रहकर ही होगा। तयशुदा रास्ते पर वापसी से मैं डर गई हूं उसकी कल्पना करके ही मेरा दम घुटने लगता है।

और किरन टेबल लैम्प ऑन करके लिखने बैठी—किरन के सूरज !

वैसा संयोग है। खिलखिलाकर हंसता हुआ बौराए आम की महक सा मादक मौलश्री की छांह सा शीतल ममता-सा-मीठा और शिशु मुस्कान सा मासूम।

भटकी हुई 'किरन' की अपने 'सूरज' से मिलने की बेला आ गई। सोचो भला 'शैल' का 'किरन' से क्या नाता ? किरन का वास तो सूरज में होगा, या फिर वह पहाड़ की चट्टानों पर अपना सर मार-मार के बुझ जाएगी ?

सच पूछो 'सूरज' तुमने मुझे मानकर मेरे नाम को ही नहीं मेरे जीवन को भी सार्थक बनाया है। मुझे जीवन का उजास उसका राग और रंग सब कुछ दिया है। और इतना दिया है कि उसे पाकर मैं 'स्वयं गर्विता' बन गई हूं। मुझे अपनों-परायों का अब कोई डर नहीं। यहां तक कि अपनी कोख से जन्मे शैल के बेटे 'निहाल' का भी भय नहीं; जो आनेवाले कल में उभर कर खड़ा होने वाला है। फिर भी मैं बहुत भयभीत हूं, तुम्हें लेकर। कभी-कभी तो मुझे तुम्हारे से भी डर लगने लगता है। चौंक गए ना ! चौंको मत !

वकील ने तो तुम्हें तार देकर सूचित किया कि तुम अपनी पत्नी से मुक्त करार दे दिए गए हो, और अब मुक्त हो अपना मनचीता जीवन जीने के लिए। अब तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। मुझे तो अपने सतफेरे से पहले ही मुक्ति मिल चुकी थी। तुम्हारी मुक्ति की ही तो प्रतीक्षा थी।

तुम्हें सालता भी होगा कि मैंने यह सब तुम्हें आगे बढ़कर क्यों नहीं बताया ? ट्रंक मिलाकर मैं झूम-झूम कर क्यों न न्यौछावर हो गई ? जबकि मुझे मालूम हो गया था कि 'उससे' मुक्ति का आदेश हमारे लिए प्रेम का संदेश लेकर आया है।

सच है, मुझे सब तभी मालूम हो गया था जबकि अदालत ने तुम्हारी मुक्ति की व्यवस्था कर दी थी। अगली सुबह की लोकल अखबार का

ह्राकर चिल्ला-चिल्ला कर मुहल्ले भर को जगा गया था—प्रोफेसर सूरज का अपनी पत्नी से छुटकारा।

दिन उगने पर तुम्हारे कॉलेज के एक सीनियर छात्र ने जब मुझे बरामदे में धूप सेकते हुए देखा तो ऊँचे सुर में 'बधाई-बधाई' कहा और सामने से गुजर गया। आज के अखबार में 'विचार आज के लिए' के अन्तर्गत छपा है—"सीढ़ी पर सब संभल कर पैर रखते हैं। कितने हैं जो सीढ़ी को संभाल कर रखते हैं?" मेरे मन में सीढ़ी को सम्भाल कर रखने की बात घर कर गई है। और मैं एक बार फिर डर गई हूं; तुम्हारे से··· हाँ सूरज मैं कभी किसी से नहीं डरी। जब मुझे आठ बरस चलते चले जाने के बाद लगा कि ब्याह से बंधी यह गैल मुझे कही पहुंचाने वाली नहीं है। वह आगे बढ़ती नहीं आगे बढ़ने का भ्रम भर देती रही है, तो अपनी कोख में एक नादान बच्चे को लेकर भी मैं उस रास्ते से हट गई और तुम्हारे आलिंगन में आ गई और जैसे सब पा गई। यह जानते हुए भी कि तुम अपनी ब्याहता को, अपने बच्चे को छोड़कर अलग बसना चाह रहे हो। किन्तु अभी कानूनी अड़चन सामने है। यह सब होते हुए भी मैंने अपने सूखते जीवन की डाल की कलम तुमसे जोड़ी और धन्य हो गई। पर आज उस कलम को बांधते हुए न जाने क्यों जी डरता है। डरता है शायद इस-लिए कि जब हम बंध जायेंगे तो टूट जायेंगे। और टूटे रहेंगे तो बंधे रहने की ललक सदा बनी रहेगी। एक बार बंधने के बाद हमारे तुम्हारे बीच क्या बच रहेगा? एक दूसरे को जिस तन्मयता से आज हम चाहते हैं, तब विवाह सूत्र में बंध जाने पर क्या यह तन्मयता इतनी गहन और सर्वभावेन रोमांचक और आत्मविस्मृतिमय हो सकेगी?

पत्नी बनकर मैं तुमसे अधिकार चाहूंगी।

पति बनकर तुम मुझसे साधिकार कुछ अपेक्षाएं करोगे।

यदि मैंने उन अधिकारों को यों ही ले लिया तो? और अगर मैं तुम्हारी अपेक्षाओं को ना चाहकर भी टाल गई तो?

फिर इस बंधन का क्या होगा? यह बंधन मुझमें तुममें कहीं फिर मुक्ति की लालसा जगा गया तो?

एक दूसरे से बंधकर यदि हम फिर पूर्व जीवन को दोहराने लगे तो?

आज मेरे तरकश में कोई तीर नहीं। उसमें केवल 'तो' ही 'तो' है। और ये 'तो' मेरे मर्म को बेध रहे हैं। सूरज ! इनसे मुझको त्राण दो।

बिन बंधे ही तुम्हारी और केवल तुम्हारी
'किरन'

किरन ने पत्र को लिफाफे में रखा और सुबह जल्दी ही खुद ही पोस्ट कर आई। उसे लगा आज घना कोहरा है आकाश में; सूरज शायद ही निकले।

× × ×

—सिविल विवाह की पहली वर्षगांठ पर किरन खूब सजी थी। सलीके से उसने अपने को संवारा था। पीपल के ताजा पत्ते के रंग की आबदार साड़ी के आंचल को 'सूरज' की आंखों के आगे लहराकर उसने पूछा था—देखिए कैसी लगती हूं।

—खूब ! एकदम सब्जपरी, पर···सरसरा पीला रंग तुम पर खूब फ़बता ऐसे गहरे रंग तब···

—अनू की मम्मी पर खूब खिलते थे। यही न ? इतना कहकर वह खिल-खिला पड़ी।

—शैतान कहीं की···और उन्होंने आगे बढ़ कर अपने में समेट लिया। किरन को ऐसा लगा जैसे उन दोनों के बीच किसी का आंचल है, जो इनके आलिंगन को, उत्तेजना को, आत्मा की गहराइयों में नहीं उतरने दे रहा। और वे उसी में कहीं सिमट कर रह गए हों।

× × ×

—पापा अनू भैया ने खुद तो बड़ा सेब ले लिया हमें छोटा दे दिया।

—अनू बेटे अपना सेब निहाल को दे दो।

—हम क्यों दें अपना ?

—दे भी दो, वह छोटा है तुमसे।

—हम अनू से छोटे नहीं हैं। खड़े हो कंधा से कंधा मिलाकर देख लें। हम बराबर हैं इनके।

—बराबर है यह, तो हम अपना सेब क्यों दें ? अनू तुनका।

—इसलिए कि सेब हमारी मम्मी लाई।—निहाल खिचा।

—तो फिर यह बैट हमें दे दो। हमारे पापा लाये हैं इसे।

अनू बढ़ा और निहाल के बगल में घुसे बैट को झपट लिया।

—"रखो अपने पापा का बैट। लाओ हमारी मम्मी का सेब।" अनू ने सुना और सेब को नीचे रख कर हिट कर दिया। सेब सीधा किचन में खौलते हुए दूध के तपेले में गिरा। खौलता हुआ दूध किरन के हाथ चेहरे पर उड़कर जा लगा। नन्हें-नन्हें फोफले डाल गया। सूरज़ के देखते-देखते यह सब हो गया और तभी उनका हाथ घूमा और अनू बिलबिलाता हुआ गाल सहेज कर फर्श पर बैठ गया।

—क्यों उठाया आपने बच्चे पर हाथ···यह निहाल तो है ही उधमी··· खाने-पीने की चीजों को नापता-तोलता रहता है। मरा खाऊ कहीं का पिटवा दिया बच्चे को। इतना कह कर किरन ने दो चांटे निहाल के गालों पर जड़ दिए।

—क्यों मारा तुमने निहाल को? क्यों? आखिर क्यों? इसलिए न कि मुझे संतोष हो जाए कि मेरा ही नहीं तुम्हारा बेटा भी पिटा है।

—मेरा तेरा आप करते हैं तो करें—किरन ने अपने हाथ पर उभर आए फोफलों को सहलाते हुए कहा।

—कमीने, दो दिन के लिए हॉस्टल से क्या आया कि आग फैला दी घर में। अगर दूध का कोई छींटा उनकी आंख में गिर जाता तो? सूरज ने अनू को धकियाते हुए फिर अनू के चांटे लगा दिए।

—इस गरीब को क्यों पीटते हैं? सारे झगड़े की जड़ तो यह फिलाना है और किरन ने निहाल को फिर पीट दिया।

—सूरज ने आंखें तरेर कर किरन को देखा और किरन ने उनके उबाल को अपनी आंखों में तोला। वह अपनी स्टडी में चले गए और वह किचन में।

अनू और निहाल दोनों बैठे रोते रहे।

× × ×

देखते हैं यह स्नेप! आपके साथ कैसी अजीब लग रही हूं इस फोटो में पहले जब एक तस्वीर उतरवाई थी साथ-साथ···किरन बात पूरी करती,

उसके पहले ही सूरज बोले—"अब भाई चांस से बनी जोड़ी और जन्म कुण्डली का जोग बिठाकर बनाई गई जोड़ी में फरक तो होगा ही।" किरन ने उनकी आँखों में झांका और उन्होंने पलक झुका लिए। पर जो वह देखना चाहती थी वह उसने उनकी मुंदी आँखों में भी देख लिया ।

× × ×

—सुनती हो, अनू की बोर्ड में तीसरी पोज़ीशन आई है। देखो यह रहा उसका रोल नम्बर। उल्लासित और ऊंचा स्वर था उनका।

—निहाल का रोल नम्बर भी तो देखो। ठंडा और उथला बोल था उसका।

—हाँ···हाँ, वही तो ढूंढ रहा हूं···फर्स्ट में देख डाला। नहीं मिला। चलो सैकण्ड वाले कामल में···। उनकी बात पूरी ही नहीं हो पाई थी कि किरन आई और अखबार उनके हाथों से लेती हुई बोली "अब आप थोड़ी देर बाद थर्ड में निहाल को ढूढने लगेंगे। लाइए मैं देखती हूँ।"

—अब किसी के देखने से क्या होगा? रोल नम्बर तो जहाँ होगा वहीं मिलेगा ना? सूरज ने आँखों से चश्मा हटाते हुए कहा।

—तो फिर आप थर्ड में ही देखें। जब ऐसा ही मानते हैं तो···। यह कह कर किरन ने अखबार फिर सूरज को थमा दिया।

—अब इसमें जी छोटा करने की क्या बात है? अच्छी तरह से···।

—आप समझते हैं, "अनुराग की पोजीशन आने से मेरा जी छोटा हो गया।" किरन न चाहते हुए भी कह गई।

—लो मिल गया। यह रहा सैकण्ड में है···जी छोटा करने की तो इसमें कोई बात नहीं किरन, पर जो मैं नहीं सोचता, कभी-कभी तुम मुझे वैसा सोचने के लिए उकसाती हुई सी लगती हो।

—अब क्या बात को धुनने लगे···छोड़ो। मिठाई खिलाइए। किरन के राख लिपटे शब्द भी आँच दे गए।

—'क्यों? मैं मिठाई खिलाऊं, निहाल की पोजीशन होती तो तुम मिठाई खिलातीं।" चाहकर भी सूरज के बोल की तुर्शी दब नहीं सकी।

—अनुराग और निहाल में आप भले ही भेद करें। फिर जितनी शक्कर डालोगे उतना ही तो मीठा होगा।

—कहना तुम यह चाहती हो कि अनू हॉस्टल में रहता है। उस पर अधिक खर्च होता है । यही ना ?

—आप आज मेरी बातों में उलटे अर्थ ढूंढ़ रहे हैं। मेरा मतलब था जो जितनी मेहनत करेगा उसे उतना ही फल मिलेगा।

—तुम चाहो तो अगले साल से निहाल को भी हॉस्टल में डाल दें। सूरज ने मेहनत की बात को परे कर, बात के मूल को छूते हुए कहा। तब तो फिर मुझे भी नौकरी करनी पड़ेगी।

—क्यों ?

—इतना खर्च एक तनख्वाह से तो जुट नहीं पाएगा।

—आने दो आज निहाल को। लताड़ कर कहूंगा कि पढ़ाई में मन लगाए। सूरज बोले।

—यह सब पहले मुझे बताना होगा ?

—बातों को उलझाओ मत किरन। "उलझाने पर चीजें सुलझती भी हैं, और टूट भी जाती हैं।" पीपल के पत्ते की साड़ी पर एक बेडौल तस्वीर उभरी, फिर एक गेन्द बनकर उछली और उसके आंचल को भेद गई। किरन को लगा जैसे वह अपने तन पर अखबार लपेटे चौराहे पर खड़ी है और निहाल अनू अपने रोलनम्बर देखने के लिए उस पर झपट रहे हैं।

नहीं···नहीं···मैं कानूनी कागज का परहन पहन कर सुहागिन नहीं बनूंगी। कागज की ओट भला कितनी टिकाऊ होगी ? किरन बड़बड़ाती हुई नींद से उठी। उसने आँखें मलकर सामने आइने में देखा तो लगा जैसे वह अपनी उम्र से बड़ी हो गई है और जैसे उसने एक ही रात में, आने वाले कल को, कल को ही नही हजार बरसों को जी लिया है।

× × ×

सात दिन टूटते कि उसके पहले ही सूरज का पत्र आया। लिखा था—

मयामयी किरन !

मुक्त रहकर जुड़े रहने के पीछे, कल के लिए जीने की ओट में, कहीं बीते हुए कल में लौट जाने की अमुखर कामना तुम्हारे मन में हो तो मुझ से छिपाना मत। मैं तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

—सूरज

किरन ने उत्तर में लिखा—
अबिसासी सूरज,

अभी हम बंधे नहीं। बंधने की प्रक्रिया भी नहीं बनी कि शंका, संशय और अविश्वास के सिलसिले शुरू हो गए। इसे मैं क्या नाम दूँ? पढ़ा था कहीं, या तुम्हीं ने कहा था कि मुक्त रहने का आनन्द दूसरों को मुक्त रखने में है।

हमारे संस्कारों को जड़-शास्त्रों से मत बांधो। उनके संस्कार भी उसे मत दो। तुम जिस सामाजिक स्वीकृति की चाहना कर रहे हो, उससे क्या बनेगा? विवाह संस्कार तो तुम्हारा और मेरा दोनों का पहले भी हुआ था। उसका क्या बना? मैं मन:संस्कार चाहती हूँ। जो लिखा है मैंने, उसे ही बाँचो सूरज।

मेरे लिखे हुए शब्दों को अर्थ विस्तार मत दो। 'मायावी' का एक अर्थ छलना भी होता है। यह संबोधन मुझे मत दो सूरज, बंधन की बात ही 'मायावी' कहला गयी तो बंधन?

—किरन

पुस्तकालय
इलाहाबाद

कांटों नहाई ओस

कैसे दिन थे ! कच्ची अमिया से लुभावने तो कभी रस भरे आम-से मन-भाते तो कभी लोनी-से मुलायम और सौंधे। उजाला अच्छा लगता, अंधेरा आंख-मिचौनी के खेल का इशारा होता, आंगन में चहकती चिड़िया अपनी सगी थी तो मुंडेर पर बोलने वाला कौआ संदेसा देता हितुमीत।

मां-मां, मुंडेर पर कौआ बोला मामा आएंगे। रमजू मामा तो आ भी गए। खील-पतासे, गेंद-कंचे और न जाने क्या-क्या लाए ! सूरज के चिलके में रख, कांच की आंख से उसने उजली अनोखी फोटू वाली डिबिया हमें भी दिखाई। रंग-बिरंगे नाचते-गाते लोग-लुगाई सब···मां ! हमारे मामा क्यों नहीं आते ?"

मां उसांस लेकर कहती, 'नहीं, मामा से तो काना मामा भला, पर तुम नसीब मारों के तो दो-दो मामा हैं। दोनों काने भी हैं, पर···दोनों एक के बराबर भी नही।'

मैंने जरा होश सम्भाला तो जाना, मां का मायका उजाड़ है। न उसके मां, न बाप ! अब तो उसकी नई मां भी नहीं रही। पर नई मां से दो-दो भाई हैं—दोनों के एक एक आंख नहीं है। उन्होंने जब एक-दूसरे को ही फूटी आंख नहीं देखा, तब भला पराई कोख की बहन, मेरी मां को वे कैसै और क्यों लखते-चाहते ?

यूं नैहर की चाह-राह, आस बिसास और हुमक-हुलास हर बेटी, ब्याही-बिनब्याही के मन में होती है, पर मां थी कि अपने बाबुल के घर के सन्नाटे को सदा आंखों में बसाए, हिए में रमाए रहती ! नैहर का उजाड़-पन जब तब रुला जाता। मुहल्ले की किसी बहन-बेटी के यहां उसके भाई-बाप आए हैं। गोद गदराने पर पीलिया-भात या अंगिया-दुपट्टा लाए हैं। मां सुनकर हिरा जाती। उसकी पलक-पांख भीग जाती वह मुझे कांख-

आंख में भर कर खूब-खूब चुपके आंसू रो लेती। अब्बा आते और मां को यूं हारा-हिरासा देखते तो, मुझसे पूछ लेते, 'बिटबे ! आज फिर पड़ोस में किसी हुसना-हलीमा के यहां उसके बाप-भाई आए लगे हैं !' और मां की पलकों पर तुले हुए आंसू उसके गालों पर ढलक कर जैसे अब्बा की बात की हामी भर देते।

"अब भई, मायके वाले जब जो करें जुटाएं, वो सब भी तो तेरे हेत आ ही जावे हैं। फिर यू थोंड़ा-थोड़ा होने, हारने-हिराने से क्या तो बने ?' फिर नबलराम काका के रहते तू अपने नैहर को जीता-जागता न माने, तो तेरे-जैसा ओछा मन किसका ?' अब्बू कहते।

ऊंच-नीच, अपना-पराया, सगे-संबंधी जैसे रिश्तो-नातों की कुछ परख जब से मेरे नन्ही समझ में जागी, तभी से जाना की अब्बा नए भाई-बहन के आने पर वे सब लाते-संजाते रहे, जो ऐसे मौकों पर मायके से भाई-भौजाई या फिर माँ-बाप लाते हैं।

माथा नहा कर माँ उजले अंगना कुनकुनी धूप में बैठी बाल सुखाती थी के मनिहार आन बोला, 'भौजी, लो पसंद कर लो चूड़ियां ! वैसे मुंसी जी ने खुद पसंद करके तो पहुंचाए ही हैं, तुम अपने मन भाते और चुन लो !"

रंगरेजिन तभी आई और रंग-राते लिहाज में बोली, "मुंसानी आपा, लो सहज लो, पीलिया-पाट : मुंसी जी ने खुद अपनी चाह से चुन कर ये रेसम की ऊंची जात के अच्छे नमूने भिजवाए हैं।"

रहीमन खाला आईं। कह गई, 'ये सितारों जड़ी मखमली जाड़ियां खूब फबेंगी तुझे बेटी। मैंने अपने हाथों इन पर काम किया है। सच्चे सितारे मुंसी जी ने दिलवाए थे···भई लुगाई जनम-जमारा तो उसका जिसके नसीब में मुंसी जी जैसा खावंद-सुहाग बदा।' दाई मां हामी भरती और बर्तन मलती जुम्मा वाह-वाह करती। माँ सब सुनती, निहाल होती और फिर गुमसुम ही डूब जाती।

मां अपनी गोदी में नन्हें ललने को सहेजे अपने पीले परहन को सहेजते-संवारते खड़ी हुई कि तभी तुफेलन खाला ने भी अपने जाए को कोख में भरा, माथे पर ठहरे आंचल को पहले नीचे सरकाया, फिर उसे

सम्भालते हुए बोली, 'मुंसानी आपा ! अबके तेरे पीहर वालों ने सुध ली तेरी, पीलिया तो चोखा लाए खूब खिली-फूली लगे है तू इसमें ।"

"जे पीलिया, पीहर का नहीं ससुराल का है ।"

"मुंसी जी खुद लाए हैं, अपनी का मन मान रखने के लिए ।" पड़ोस की बिस्सो बुआ बोली।

"वाह ! उलटे बांस बरेली ! भई अपने घर-मरद का लाख ओढ़-पहन लो, पर पीहर की लीर-चीर से जिए में जो हुमक-दुमक जागे वो कहां ! दूर रिश्ते की देवरानी ने मार की और अपने भाई के हाथों ओढ़ाए पीलिए को सहेज ऐसे होठ हिलाए के मां को लगा वे बिना लीर-लीतर के उघड़ी, बेपर्दा पांच लुगाइयों के बीच खड़ी हैं ।"

ऐसे में, मां जहां होती वहां होकर भी नहीं होती । तभी किसी ने कह दिया, 'भाई-भाई, भाई होवे भरतार भाई का वान लेता कोई अच्छा लगे ।' और सब हंस पड़तीं । फिर तो मां का वहां खड़ा रह पाना अचम्भा होता । मां ने, आगे पांच लुगाइयों के जुड़ने पर उनके बीच पीलिया ओढ़ कर जाना छोड़ दिया, तो अब्बा को अखरा । जोर देते—वो ही पहन जो छुटके के जन्म पर आया था । मां कैसे समझाती उन्हें । हार जाती और फिर लुगाइयों की भाई-भरतार के बदल की बात सोच छोटी-छोटी और गुमसुम हो रहती । डबडबाई आंख-पांख लिए सहारा लखती और उसे तभी वह मिल गया, जिसकी चाह में हारी हिरसाई थी ।

'नवला नाना' आए थे मां के मायके से। गांव से शहर, तिलहन-कपास बेचने । छूटके को गोद में बिठा कर औ मेरे माथे पर हाथ फेरते हुए नेअ-निहाल नजर से उन्होंने मां को निहारा और होले से बोले थे, 'गट्टू बेटी ! मेरे भाग बेटी नहीं बदी, पर तू जाने, तुझे याद करके, तेरे कने आकर, मुझे नी लगे कि मेरे कोई बेटी नी । तू जाने, तेरे 'अलमू' का नाना और मैं गांव में एक दूजे की छाँई-परछाँई बन के रहे बढ़े । तेरी मां ने तो राखी बाँधीं थी, इस बिन बहना के भाई की सूनी कलाई पे । सच्च गट्टू, तेरी बाड़ी को फला-फूला देख मुझे लगे के जैसे मेरा खेत हरिया गया, मेरी अपनी बेटी के आंचल की बेल में फूल-ही-फूल भर गए ।"

"काका ! तुम्हारे जी-जान में मेरे पीहर की जोत जगी लगे मुझे ।

तुम मेरे घर-आंगन आकर गट्टू की टेर लगाओ तो मुझे लगे जैसे सात परिवार मेरे आगे हैं, मुझे पुकारे हैं। तुम्हारे अंगोछे से मेरे पीहर के छोर बंधे है, जीते हैं, काका···पे तुम छठे-चौमासे ही सूरत दिखाओ हो।"

मां की आंख में पानी होता और नवल काका अपने अंगोछे को अपनी आंखों से लगाते।

मां उधर अपने को साधती, इधर नवल नाना भी अपने को सम्भालते।

"नाना जी के पैर छुआ, सलाम करो इन्हें, आते ही बस चढ़ गए सिर, उतरो नीचे।" मां हमें छुई-मुई-सा डटियाती। पैर छूने की बात हमें अट-पटी लगती। मैं गोद से उतर कर 'सलाम नाना जी' कहता और मुनिया 'छलाम' कहकर अपनी नन्ही हथेली अपनी आंख-पांख पर रख कर मां की छाती में मुंह गड़ा लेती।

नवल नाना के अंगोछे के छोर में खांड-चने बंधे होते और वे हमारे सामने गांठ खोल देते। दो मुठ्ठी खांड-डूबे चनों में मां न जाने क्या देखती और झट उन्हें अपने आंचल के छोर में सहज लेती। फिर हमें चुटकी-चुटकी भर यूँ देती जैसे अमरित बूंद बांट रही हो या अजमेर वाले ख्वाजाजी का तबर्रुक, 'गट्टू! लो ये तेरे लिए पीलिया लाया हूं—इस बार तिल के चौखे दाम पट गए। ले, रख ले इसे, और तो क्या बना है तेरे इस बूढ़े काका से, अब वो बेटे तो···बस।' वह बोलते। काका! क्यों जतन-जाल में डालो हो तुम अपने को, तुम्हारे खांड-चनों में जो अमरित भरा है वो भला लुगड़े-लीतर में कहां? ये सब क्यूं करो हो मेरी खातिर।' मां कहती।

"नी रे बेटी! तू बहू-बेटों की मत सोच, आखिर तो खेतें-कुएं मेरे बनाए-चुनाए हैं। क्या तीन फसलों में मेरा इतना हक भी नी के मन का कुछ कर-धर सकूं। और नहीं तो अपने नेह-नाते की बेटी हेतु एक चीर-चोला भर जुटा सकूं···"

"···पाहुने तो अब न जाने कब आएं।" उनका इशारा अब्बू के लिए होता है। "मेरे आसीस बोलियो उन्हें। तो चलूं, सुआ-मैना में।" अब उन्होंने हम भाई-बहनों के गालों को सहला कर कहा, 'काका! सोचा, कभी के तुम मेरे यहां का पानी तक नी चखो और मैं?···"

"अब गट्टू, तू अनजान बने तो तू जान। भला बेटी के घर पीवे है पानी कोई बाप? तेरा बाप जीता होता तो पी लेता तेरे घर का पानी? उसमें मुझमें फरक करे है तू बेटी?"

"नी-नी, वो बात नी काका—ये टाबर-टसूए पूछे हैं···" नाना जी अपने यहां खाए नी, पानी भी नी पीवें···वो हिंदू हैं और हम···'

चीर हरण के बाद

पहले मौसम ने पुरवैया का झीना घूंघट टरकाया और फिर बादल का गढ़ा ओढ़ लिया। जाने कैसे और कहां से सरदाई हवाओं ने गमक ली कि सुरसुरी छूट गई। आकाश के किसी कोने में दुबक कर बैठी अमावस की भोर ने तभी आंचल निचोड़ा और देखते-देखते शहर का ओर-छोर भीग गया। धरती की सांस में मिट्टी की सोंधी सुगन्ध रच गई। पवन वेग कुरमुरा कर ठहर गई, एकदम सांस रोके चुप। अमा की सांझ का आंचल लहराता कि बिन मौसम की अनचाही छींटा-छांटी बिलमा गई और दीपावली के दिये आंगन-मुंडेर पर उजली किलकारी बिखेरने लगे। हाट-बाजार में भीगी-भीगी नरम रोशनी, ठहरी हवा की हथेली की ओट, जगर मगर हो उठी।

"आदिवासी-हस्त कला केन्द्र (सरकार का अपना प्रतिष्ठान) बड़ी और ऊंची दुकान के माथे पर तिलक की भांति चढ़े नियोन लाइट्स के लेख जगमगाने लगे। इस प्रतिष्ठान का राज्य के उद्योग मंत्री के हाथों, दीपावली के शुभ अवसर पर, आज ही रात को नौ बजे उद्‌घाटन होना है। आदिवासियों के हाथों में आदिकाल से सुरक्षित दस्तकारी को व्याव-सायिक स्तर पर पनपाने के लिए नये मंत्री की कल्पना आज साकार होनी है। प्रांत के हर बड़े नगर में ऐसे एक केन्द्र की स्थापना के आदेश जारी किये जा चुके हैं। उत्तर भारत के 'वेनिस' नाम से विभूषित इस ट्यूरिस्ट नगर में यह पहला केन्द्र है।

उद्‌घाटन समारोह में कहीं कोई कसर न रह जाए, इसके लिए जिलाधीश ने स्माल इण्डस्ट्रीज विभाग के तेज तर्रार और चुस्त-चौबन्द डिप्टी डायरेक्टर श्री तिरखा को खास तौर पर तैनात किया है। तिरखा साहब अपने चार सहायकों के साथ दो घंटे पहले ही आ चुके हैं। अपने

सजग 'ऐस्थोटिक सेंस का पूरा-पूरा उपयोग करके उन्होंने दस्तकारी के मुंह बोलते नमूनों को यूं सजवाया-जमवाया कि केन्द्र में पैर रखते ही मुंह से 'वाह खूब' निकल जाए तो, अजब नहीं। तिरखा साहब चौ-फेर आंख डालकर जायज़ा ले रहे थे कि कहीं कोई कभी-कसर तो नहीं रह गयी, सभी कुछ डायरेक्टर स्माल स्केल इण्डस्ट्रीज की पूर्ण योजनानुसार तो है न? वह साज-सजावट को अभी तोल ही रहे थे कि उनकी निगाह ने ठोकर खायी।

—"अरे ये कैसे खाली पड़ा है?" उन्होंने अपने सर से भी ऊपर निकलते हुए कांच के उस चमकते हुए आदमकद शो-केश के शीशों पर हाथ फेरते हुए कहा।

—वो साब···इसमें आदिवासी युवती की डमी-प्लास्टिक की डमी लगनी है—और वह आ नहीं पाई। रिमांडर पर रिमांडर जा चुके हैं, परसों तार भी दिया पर···

—वो सब तो किया पर अब वक़्त कहां? शो-केश में आदिवासी युवती की डमी रखने का आइडिया खुद डायरेक्टर साहब का है, और वही गायब···यह केस लगा भी ऐसी कमांडिंग पोजीशन में है कि इसे हटा दें तो सारे केन्द्र की नाक ही उड़ जाएगी। रंगीन सीमेंट में सीप के चमकीले चिप्स से चमकते पिलर से सटे शो-केश को निरखते हुए तिरखा साहब ने कहा—"भई, कुछ भी करो, कैसे भी हो, डमी तो इसमें लगनी ही चाहिए। शहर में कहीं नहीं कोई डमी?

—है तो साहब, पर वे सब स्कूल के लड़कों की हैं।

—अरे मारो भी गोली। अपना दिमाग फेंको कहीं···तिरखा साहब अपनी बात पूरी करते कि तभी उन्हें सामने टेंट की कनात के पास एक भिखारिन दिखाई दी। वह कनात के पीछे बननेवाली पूरियों-कचोरियों की सुगन्ध से बंधी मुंह चौड़ा कर अजीब ढब से चिरोरी कर रही थी, बाबू एक कचौरी—बस एक पूरी, तिरखा साहब के माथे में जलूं-बुझूं, जीरो बल्ब की दिप-दिप में नाचता हुआ बिजली का मोर बोल उठा, "ठीक आदिवासी ही लगती है यह जवान भिखारिन, इसे ही नहला-धुला, सजा-संवार कर आदिवासी पोशाक पहना कर शो-केश में खड़ी कर दें तो?

यही कोई आधे घंटे के लिए ! बस उद्घाटन का फीता कट जाए। एक राउण्ड मिनिस्टर साहब ले लें—फिर इसकी छुट्टी।" तिरखा साहब ने सब सोच लिया और अपने सेक्शन इंचार्ज को, दूर अलग, ले गये। उसे जरूरी हिदायतें देकर आंख का कोना दबा दिया। देखो—"शेमे" तुम्हारे और केन्द्र के मैनेजर के बीच रहे यह बात, औरों को कानों कान खबर न हो।" तिरखा ने शर्मा के कानों में फूंक मारी और साज-संभाल में फिर जुट गए।

× × ×

मंत्री जी के आने के थोड़ी देर पहले ही केन्द्र की बिजली चली गयी। तिरखा साहब हड़बड़ाकर बोले, "देखो तो वर्मे-शर्मे यह सब गुल गपाड़ कैसे हो गया।" कोई पांच मिनिट अंधेरा रहा और फिर सब जगमगाने लगा, आदमकद 'शो-केस भी। युवती की डमी थी उसमें एकदम सही-सजग ठीक वैसी ही जैसी तीज त्यौहारों पर देखी जा सकती हैं। अपनी पारम्परिक वेश-भूषा में गहनों से सजी-संवरी एक आदिवासी युवती की डमी लगी थी उसमें।

तिरखा साहब ने सब कर लिया था। एकदम सौ टंच। तभी कार का हार्न सुनाई दिया। पुलिस के पयादों में हलचल हुई। मंत्री जी आ गए···आ गये मन्त्री जी···अगली कार के रुकते ही पिछली कार से कलेक्टर साहब उतर पड़े और कार के फाटक को अदब से अपनी ओर खीचते हुए, "पधारो सर" के बोल के साथ दौहरे हो गए। एस० पी०, डी० एस० पी० ने सलाम ठोके और अगवानी में दांये-बांये चलने लगे।

नियोन लाइट्स के मुस्कराते हुए साइन बोर्ड पर मंत्री जी ने नजर डाली। नन्हीं ऊंचाई वाली सीढ़ी पर पैर रखा कि उनके गले में फूलों के हार झूल गये। कैमरे की आंख चमकी और सामने आई तशतरी में से चिलका मारती कैंची उठा कर उन्होंने फीता काट दिया। कैमरों ने फिर आंख चमकाई और चौफेर में तालियों की गड़गड़ाहट भर गयी। मंत्री जी आगे बढ़े पहले एक नज़र शो-केस पर गयी। उन्हें लगा जैसे शो-केस के शीशे पर झूलते खादी के फूलों के पीछे आदिवासी लड़की की मूरत में कहीं कुछ सुरसुरी-सी जागी है तभी उनका पी० ए० सारी कहता हुआ उनके

पास आया और उनके कान में कुछ फुसफुसाकर परे हो गया। मंत्री जी की चाल में तेजी आ गई। और वह अब सब झट-झट निपटाने के मूड में आ गए। चटपट उन्होंने केन्द्र का राउण्ड लिया और बाहर आकर शामियाने की ओर बढ़े। सामने लगे आसन को ग्रहण किया। स्वागत भाषण करते हुए जिलाधीश उनके मंत्रालय की उपलब्धियों को और गिनाएं इससे पहले ही वह चेहरे पर आभार का भाव लाकर खड़े होते हुए और 'दो शब्द' के बदले सौ दो सौ शब्द कहकर ही बैठ गए उनकी उतावली को लक्ष्य करके आयोजक भी जान गए कि शायद राजधानी से बुलावा आया है। इधर मंत्रिमंडल में हेर-फेर की बात भी राजनीतिक हलकों में गरम थी। धन्यवाद और औपचारिकता पूरी करते ही आगे वाले शामियाने की कनात हट गई। सामने जफे डिनर था। मंत्री जी थोड़ा-सा चुग-चुगा कर 'क्षमा करें' कहकर अपनी कार की ओर बढ़े। उनके रवाना होते ही टेबल पर तश्तरियां चम्मच बजने लगे। अंग्रेजी ढब में परसा गया भारतीय खाना ठेठ हिन्दुस्तानी ढब से खाया जाने लगा।

जिलाधीश के साथ दूसरे छोटे-बड़े अफसर रवाना हुए तो साढ़े नौ से ऊपर हो गए थे। दीपावली की रोशनी में लोगों के चेहरे चमक रहे थे। सब में एक हुलास था सबके मन खिले-खुले थे पर 'वह' शीशों के पीछे बंद, रोशनी के धारों से घिरी हुई, सांस रोके मुरदार खड़ी हुई थी एकदम चुप वे हिलबुत्-डमी। गरम पूरी-कचोरी, हलवे भात और सब्जी-सालन के तीखे भभके शो-केस पर दस्तक देते, पीछे के खुले हिस्से से घुस कर, उसकी भूख को भड़का रहे थे।

आज उजाले के त्यौहार पर भौर-किरन जागे ही दारू की बासी बू फेंक कर उसका घरवाला उसके मन-माथे पर अंधेरा उंडेलता बोला था —अंटी ढीली कर अपनी आज दीवाली है, पीने के लिए आज भी ना बोलती है। भगतन छिनाल, तैवार के मौके पर अपने जने को कोख में उछाल कर उसके भूख रोग की दुहाई देकर, कल दिन भर मांगा खाया और मुझे पव्वे के पैसे पर टरका दिया रात···ला और ला···

—अब और कां से दूं? रात को पिया। अब, मूत पी ले जाके कुंडी का जा···पीऊं पीऊं रात दिन पीऊं···जे मान जी के बेटा भूखा है। सूखा

रोग है उसे, उसके लिए कुछ···

—सीख देती है, मेरे को, मेरे साले की लुगाई तू। चल, कर ढीला अपने बिलाउज का गूमड़। केबेनी है मेरे कने, वो जो छाती पर गूमड़ दिख रिया पैसे कहां खोसे हैं—मैंनी जानू भला।

—ले देख अपनी मेना-महतारी का गूमड़, ले है कुछ इस चाटे जाम में। इतना कहकर उसने अपनी छाती पर चढ़के फटे ब्लाउज को ऊपर अरस दिया।

—सूकरी जोबन दिखाती है। जेठ-देवर सब हैं आस-पास, सबके सामने नंगी होवे तू···इतना कहकर वह डगमगाते पैर आगे बढ़ा और उसका झोटा पकड़ कर खेंच लिया।

—छोड़ कसाई छोड़···। वह चीखी और दोनों हाथों से उसे इस जोर से धकेला कि वह जमीन पर गूदड़ में लिपटे उसके 'बंचवा' पर जा गिरा। बचवा बिलबिला उठा वह उसे उठाने के लिए लपकी तभी उसने संभल कर उसे अपनी गोद में ले लिया।

"—माटी-पूत दोनों को एक साथ सफ्फा कर किसी और यार के पास जाने की सोचे है तू। सब जानूं।" उसने गहरी मार की।

"तेरी मां की जायी-जनमी ही वैसा करें, मैं नी करती वैसा सांग कुंआरी बहना और रांड मां, अपनी, का पेट देखा है, ऊंचा उभरा? मेरे सामने ऊंचा मत बोल हां। छोड़ मेरे दूध पूत को।" धारदार मार की उसने और अपने बचवे को छीनने लगी उसकी बांहों से।

—"तेरा दूध है कि मेरा तुखम···इसी की दुहाई दे खूब भीख कमाई करे तू। अब इसे मैं अपने पास रखूंगा। खुद मांगूंगा। देखूं तू अकेली कित्ता लावे है?" बचवे को उसकी पहुंच से परे कर वह बोला।

—"जे बात तो तू ले जा इसे। इसका भी पेट भर ले तो बोलना। देखूंगी मैं।" उसने कहा और वह रोते बिलबिलाते बचवे को लेकर चल पड़ा। मेरे से दूर वह अकेली बैठी रोती रही। जुंए मारती रही। सूरज चढ़ा तो पेट में घुड़घुड़ी बजने लगी। उसे ध्यान आया इस नसेड़ी मरदुए ने बचवा को चा-पानी भी पिलाया होगा के नी। चार पैसे हाथ चढ़ते ही वह कलाली की गेल लेता है। बचवा बीमार है। कहीं वह उसे भी दो

घूट दारू नी पिला दे।" इस सोच से ही उसे पसीना छूट गया। और अब वह 'उनकी' खोज में निकल गई। गांजे के अखाड़ों से लेकर ठेके की दूकान तक, गली हाट-बाजार सब नाप लिए उसने पर 'वह' कहीं नहीं दिखा उसे, घूम-फिरकर तीन-चार चक्कर अपने डेरे के भी लगाए उसने। वहां न वह था न उसका बचवा, अपनी जात-बिरादरी, सगे-संगियों से भी उसने पूछा, पर किसी ने 'बाप-बेटे' को कहीं देखने की हामी नहीं भरी।

भूखी-बेहाल, सोच में डूबी वह यहां-वहां शहर में डोलती रही। सांझ हो गई पर उसे उसका बचवा नहीं मिला। दीवाली के दियों का उजास फैला और उसका मन अंधेरे में डूब गया। भूख तो अजानी या परायी नहीं थी उसकी रगों-नसों में रहती आई थी। बचवे के विचार से उसके पैर कांप-काप गए पर रुके नहीं। अब वह हाथ फैलाये आदिवासी हस्त-कला केन्द्र के सामने तने शामियाने के सामने खड़ी थी। तभी कुछ देने दिखाने की बात कहकर उस बाबू ने उसे सूट-बूट वाले साहब के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। दस रुपये का नोट लहराया और उसकी आंखों में गोल-गप्पे से बच्चे की झांई तैर आई। डाक्टर ने बचवे को देखकर कहा था—कैसे भी हो, दूध का एक डिब्बा ले आ। कुछ दिनों अपना दूध इसे मत पिला। सूखा हो गया है इसे। उसे बचवा की फिर याद आई। और नोट अंटी में खोंसकर वह बाबू के पीछे हो ली।

× × ×

जवान बनी उसे बूढ़ी चिकनी चुपड़ी बाई ने जब अपने ही बराबर आरसी के सामने खड़ा कर दिया तो वह अचकचाकर पीछे, खिसक गई। आरसी में खड़ी जे रूपवन्सी कौन ! वह पहचान नहीं सकी जे वो 'सीलौ' है—नसेड़ी 'चन्ना' की बू, 'सूखे बचवा की मतई' दर-दर हाथ पसारती भीखन ? नहीं।" और वह शीशे में उभरी अपनी ही परछाई से झेंप गई।

बड़े मदरसे में पढ़ने वाली जवान-जबर डीकरी—छोकरी ही तो दीखे है, वह इन सुधरे-संवरे, रंगे-सजे भेस में। इधर वे लिखी पढ़ी बाइयां भी तो कभी-कभार धारे हैं ऐसे भेस। वैसी ही, वो ही, पहाड़ी भीलन वाली घघारिया। वैसी ही आंग-मांग और वैसी ही फैला-फूला उभरा औढ़ना चोली-चीर। ऊपर से धधकती छाती पै जे चांदी की सांकल हंसली, कानों में

बाले, बालों में जंगली फूल, फूलों में पत्ती और पत्ती में फिर रंग, हाथों में सीप-घूंघची के कंगना, पैरों में···पैरों में जे जकड़ बंद झांझर···अंगों में बेहिल ठहरावा आंखें कांच पर टिकी हुई, पत्थर बनी हुई। अंधेरे ने कुछ देर पंख फैलाए ही थे कि वह इस कांच की खोल में बंद हो गई। जब उजाला आया तो वह एक मूरती बनी उसमें खड़ी थी, सूखे तने-सी अचला बगुलापंखी टोपी वाला वह 'नेता बाबू' जब आंख गाड़ उसे जोह रहा था तब उसके भीतर-ही-भीतर जैसे कहीं कुछ हिल गया था। वह थोड़ी देर और उसके सामने रुकता तो वह चिल्ला उठती कि मैं···मैं की बेजान गुड़िया नहीं हूं, 'सीलू हूं-सीलू भीखना'। मेरा बचवा भूखा है, मैं भी भूखी हूं। बाकी दस का नोट और दो मुझे। मैं गबरू बच्चे छाप दूध का डिब्बा अपने बचवे के वास्ते लाऊंगी। उसे सूखा रोग है बाबू, मैं भूखी हूं।

"मैं भूखी हूं···मेरा बचवा भूखा है। मुझे भी दो, पुरी कचौरी हलवा कुछ।" वह न जाने कब कांच के घर से बाहर निकल आई थी। तिरखा जा चुके थे और शर्मे-वर्मे भी केन्द्र के काउण्टर बाबू को, सब समझाकर मैनेजर भी उसे यह हिदायत देकर चला गया था कि वह उस भिखारिन को दस रुपये देकर कपड़े-जेवर सब उतरवा ले और रजिस्टर में जमाकर ले। उसे यूं भूख टेरते देख सब सकते में आ गए। बाबू को चेत हुआ तो देखा कि वह प्लेटों प्यालों में बची झूठन को खा चाट रही है। उसे अपने आंचल पल्ले का तो जैसे होश ही नहीं। नया लंहगे—लूगड़े को उसने चिकना-चुपड़ा होता जो देखा तो नास कर डाला सबका कहता हुआ वह आगे आया उसे वहां से हटाते हुए बोला—अरे। सूपनरता ये तूने क्या कर गेरा, चाशनी शोरबा सब लगा दिया इस नये आइटम पे···अब कोई तेरा बाप मोल लेगा इन्हें ?"

"अरे तो भिनभिनाये क्यूं बाबू। ला हमारा अपना लूगडा लीतर और संभाल अपना लहंगा आंगिया।

—हां-हां, चल उतार-धर हमारा सब, संभलवाना है इसे आगे।

—कौसे बोले। पर हमारे लीतर भी तो लाओं जो इन्हें उतार उन्हें फिर धार लू मैं।" बाबू ने सुना और पुकारा।

—"जंगी ओ जंगी, अरे कहां है ? इस भूतनी का संरौपाव ला दे,

इसको।

—"वो बाबू इधर पिछवाड़े इस्टोर में, कह दो इसे वहीं चली ज़ाए और बदल ले।" वह डाटक जवान जंगी कह गया और एक आंख को दबा कर कुंआरे बाबू ऐसा कुछ जता गया कि सीली के पीछे वह भी चला।

—दीपों के सिलसिले अब टूटने लगे थे। बिजली के बड़े डण्डे-लट्ठ अब कम हो गए थे। और टुइयां जुगनू वल्व का उजाला मांद सा लगने लगा था।

—देख संभाल सहन कर हटाइयों। लूगढ़ा लहंगा, मसक मुसक न जाए कहीं। बड़ी महंगी है। नहीं तो हम हाथ लगा दे। स्टोर की बड़ी अलमारी के पीछे कपड़े बदलने को खड़ी सीलू से जंगी ने भेद भरी बोली में कहा और दोगली मुस्कान देकर उसके बाजू मैं आन खड़ा हुआ।

—अब जे मुंह झोंसा मरा हुआ हमें सिखाएगा, लूगड़ा, चोली उतारना, पहनना चल परे हो···सबला हमारे लीतर तभी उतारु न जे कफन तेरा···

—होय···होय गजब की भरी वो तेरा रेशम पाट तो वहीं रह गया। उसी सिंगार घर में जहाँ तेरा जे चोल बदला था उस सिंगारू बाई ने। तुझे भिखारन से पर्वत सुंदरी बनाया था जंगी की सांस अब उसकी गर्दन-कानों पर तैर रही थी।

—वो सब भूल जा ले आ मना ले मेरे संग दीवाली नया लहंगा लूगड़ा देंगे तुझे पर ऊपर दस का नोट और बस हम दो ही हैं और कोई नहीं। बिखरे बौराए बोल बोले जंगी ने और झपट कर उसका आंचल भर लिया अपनी मुट्ठी में फिर उसे अपनी तरफ खींचते हुए एक झुरझुरी हंसी हंस दिया।

—ना ना···छोड़ मुझे। अब्भी मैं हाका कर दूंगी, लोग भेली हो जायेंगे छोड़···।" इतना कह कर सीलो ने सब जेवर-जंजीरें उतार कर फैंक दी और छिटक कर दूर खड़ी हो गई। उसका आंचल अब भी जंगी के हाथ में था जंगी आंचल खींचता उसके लपेट-पेच खोल रहा था। वह उससे परे होती-होती दरवाजे की तरफ हुई तो सामने बाबू खड़ा था, आंखों में जिन्दा बोटी की भूख जगाए। इस छोर पर जंगी उस छोर पर बाबू। सीलो अपनी धौंकती छाती से आंचल सटाए दोनों के बीच सहमी खड़ी थी।

सिपाई···सिपाई···सिपाई आ गए की टेर हवा में कों थी जंगी और बाबू बहने और वह यह जा वो जा। सीलो हवा के पैरों पर उड़ रही थी और वे दोनों पत्थर के पैरों पर ठुके खड़े थे। "साली नीच जात···धोखा कर गई।" जंगी बुदबुदाया, "मार भी गोली दगाखोर तिरिया को।" बाबू ने कहा और दोनों चुप हो गए।

× × ×

दीपावली की टूटती रात के उजाले-अंधरे में वह उड़ान भरती-सी उजले और नये कपड़ों से अपना आधा तन ढापं अपनी झुग्गी के सामने जा पहुंची उसके सामने लड़खड़ाते पैरों पर चन्ना खड़ा था—

—तो आ गई पातुरिया। दीवाली मना के···वाह। तेरा निखरा-बिखरा जे रूप, बालों में पट्टी गालों में गुलाल आंखों में कजरा बालों में गजरा···जे छमिया तेरा चीर कौन हर ले गया। चन्ना नशे में भी पते की और सही-सही बात बोल गया।

चन्ना में सौं लेकर कहूं परन्तु मानेगा नी तू···जे सब···

—जे सब भीख में दे दिया दाता ने जे हीना। गालों पर झाल भी और गले में नखमार भी। पै वो लूगड़ा—चीर कौन हर ले गया वा ऐ, भोली सीलो···खूब मनाई तूने दीवाली खूब किया उजाला तूने। लाई कुछ अपने बचवे-ललवे के हेत भी···या फिर···

—लाई हूं जे देख दस का नोट उसके लिए···डिब्बा दूध।

—दस के नोट के बदले करवा लिया अपना काया-पलट···खोल दी कुत्तों के आगे अपनी छाती···पिला दिया दूध जारों को···

—तू अभी नसे में है चन्ना। मुझे अपने बच्चे की सौं मैं सांस—रोक-मजूरी करके, कांच के घर में पत्थर बन के···

क्लाक भर के लिए मरके, जे दस रुपये लाई हूं, चन्ने! अपने बचवे के लिए।

—अपना चोला उजाल के लाज लुटा के लिखे-पढ़े बाबू लोगों के साथ क्लाक भर सो ली, तो लगी लिक्चर पिलाने। रात भर जो उनके संग होती तो अपनी खोली की गैल भूल जाती···चन्ने को अपने बेटे को भूल जाती पे मैं नी भूलूंगा···तैने चन्ने के भरोसो को लुटा दिया, बेच दिया, मेरे

बिसास को नंगा कर दिया···मेरी नाक कटा दी।, "मैं तुझे नंगा कर दूंगा···।" इतना कहकर वह बिफरे चीते की तरफ सीलो की तरफ झपटा और उसका ब्लाऊज चीरकर चिंदियां कर दी। सीलो संभले कि तभी उसके हाथ में उसकी घघरी की लाव आ गई। हाथों से अपनी लाज संभालती कि तभी वह उस पर टूट पड़ा फिर बिफर कर बोला, "मैं आज अपने हाथों तुझे नंगी कर तेरी लाज लुटाऊंगा अपने भाई-बाप के आगे।" इतना कहकर वह उससे गुंथ गया।

हड़बड़ी सुनकर पास के लोग खोली के पास आ गए तो देखा सीलो के डील पर एक चिथड़ा तक नहीं और चन्ना उसकी छाती पर बैठा मुक्के तान रहा है। सीलो की मुट्ठी बंद है। मरद तो सब देखकर वहां से हट गए। बस गगनों बुआ आंख पर पल्लू धर चिल्लाई, "दे भी दे सीलू जो तेरी मुट्ठी में है जे वेनसेड़ी-कसाई नी मानने का।" सीलो ने सुना और मुट्ठी खोल दी। चन्ना नोट झपट कर बोला—

—नहीं बुआ नहीं मुझे नहीं लेना इसकी लाज का मोल···नी पिवेगा बचवा इसका दूध नीं···कभी नीं।" और दोनों हाथों से नोट के टुकड़े-टुकड़े कर हवा में उछाल दिए।

बछड़े की जान पर आए संकट को जान कर जैसे गाय कुत्ते को सींग पर झेलती-झपटती है वैसी ही सीलो बिफर कर उससे परे हो गई और दांत कटकटाते हुए गरजी—

"नसेड़ी ! नाड़कटे में तेरा लात-घूंसा, जोर-जबर, झेलती रही अब्बी तक, जे समझ के कि अपनी सतफेरी की लाज लुटी जान मेरा पति-परमेसर हल्कान परेसान हो रिया···पर तेन्ने तो मेरे बचवे का नोट फाड़ दिया··· उसके दूध भरे डिब्बे पै ठोकर मार दी···अब में तुझे नी छोडूंगी·· तू··· तू मेरे बचवे का बैरी।" इतना बोल वह बिफर कर झपटी और उसकी पकड़ से छूट कर उसे यूं धकेला कि वह चित हो गया। अब वह उसके सीने पर चढ़ बैठी। फिर दोनों हाथों से उसके मुक्के मारने लगी। इधर वह उसके मुक्के मारती जा···अपने बाल नोच रही थी, उधर उसका बचवा गगनों बुआ की गोद में मिमिया रहा था।

उजाले की प्यास

—मैं तो उसका नाम उजाला रखूंगी।

—और जो लड़की हो गई···

—तो···तो ऊजली !

—और नामों का जैसे अकाल पड़ गया···तुझे उजला ऊजली ही सूझे ?

—अंधी को उजाला ऊजली नहीं सूझेगा तो भला रंगों वाले नाम नीला-नीलू सूझेंगे।

—अंधा तो मैं भी हूं। पर तेरी तरह यूं रात दिन अंधेरे में डूबा नहीं रहूं।

—हां···हां···बड़े हौसले हैं तुम्हारे···पर औलाद से ही उजला होवे है घर में। बेटा तो कुल दीपक···आंखों का नूर कहलावे ही है।

—वो ही ठीक। अब बोल किसे टेरुं। उजाले लाल को या ऊजला कुमारी को ? या फिर दोनों को एक साथ।

—धत् लाज नी आवे तुम्हें···

—क्यूं···जुड़वां दो-दो नी होवें एक साथ ? सच, मुझे उजाला और तुझे ऊजली मिल जाये एक साथ तो ! इतना कहकर मरद ने अपनी ब्याहता की उंगलियों के पौर पर अपनी उंगलियों के पौर रख दिए। और उसने उसकी बेनूर आंखों को अपनी उजली हथेली से ढांप दिया।

—"बेटा जनमा है।" बेसुध सी पड़ी निहारो ने सुना था। सुनते ही उसकी सकत जागी। बुदबुदायी उजाला और एकाएक ही ऊंचे सुर में पूछ बैठी डाक्टर बाई ! भला करो और बताओ तो मेरे जाये को दीखे भी है ?

—"दीखेगा क्यों नहीं भला।" डाक्टर ने अंधी मां की पथराई आँखों में बुझन देखकर कहा।

—इसके तो दोनों आंखें हैं।

—आंख तो मेरे भी हैं और उनके भी। दो और दो चार पर दीखे एक से नहीं हम दोनों जनम से···

—तसल्ली कर तसल्ली-सब ठीक है।

"बेटा तेरा एकदम सही है।" नर्स कह रही थी। जनम-कमरे से हट कर जब वह दूसरे कमरे में बदले हुए खाट पर आई तब भी उसके माथे में यही कौंध रही कि उसके उजाले को दीखता भी है या···अपने मां-बाप की तरह वह भी ··" यही सोच कर भँवर में उलझी थी कि एक जानी-पहचानी आहट के साथ उसके माथे पर उसकी सगी छुअन अवतरित हो उठी। वह खिल गई, उजला गई, और मुंह पर लाज का आंचल रखकर मुस्काती हुई बोली—

—देखो जानो किस पे पड़ा है?

—सब जानू-बूझूं हूं। मुझ पे या तुझ पे। बेजू अपने पहले बच्चे की आंखों पर हाथ फेरते हुए बोला।

—मुझ पे तुम पे···तो क्या यह भी हमारी तरह···? जानो-बुझो तो भला कि उसे दीखता भी है या···उसने उसांस भरी।

—ठीक कहूं हूं कि तू; हमेसा अंधेरे में डूबी रहे है। जब पूरा सही बच्चा है—उसके आंखें हैं तो···

—आंखें तो मेरे भी हैं तुम्हारे भी, कित्ती बार बताऊं। सही तो हम भी हैं। कहीं कोई खोट नहीं—तुम भी मुझ से डाक्टर नरस जैसी बात कहो···बिना परचे परखे···तुम्हें अपने उजाले की आन···सच मुझे बिसास करा दो कि मेरे दूध-पूत को दीखे है। वो हम पर नहीं पड़ा।" निहारो एक सांस में कह गई उसकी अंधी, बेनूर, आंखों का पानी बूंद-बूंद करके उसके गलों पर ढरकने लगा।

उसने अपने पास आने वाले सभी भीत-हितु जाने—अजाने सब से यही पूछा कि मेरे पूत को दीखे तो है ना? और सभी ने कहा उसे खूब दीखे है। वह लाड़ करनेवाले पर आंखे टिका कर हुमके है। उसकी आंखों में भरपूर उजाला है। बेजू ने भी उसे ऐसा ही बिसास दिलाया। पर उसका अपना जी कैसे माने? उसे खुद को दीखे नहीं और नन्हा बेटा बोले नहीं।

उसने अकेले में उसके कान में पुकारा भी—"मेरे लाल तुझे तो दीखे है ना सब अपनी मां का रंग-रेख तो बता भला।" पर बोले कौन-जवाब कहां से आए। बेजू ने उसे सोच में यूं घुलते जाना तो गुस्सा गया। फिर एक दिन उसका मान-मन रखने को बोला—

"निहारो! सुन; समझ में पुकारूं हूं तेरे उजाले को—उसकी आंखों के आगे चुटकी चटका कर। वो हाथ ऊंचे करे तो तू जान लेना उसे दीखे है।" इतना कहकर बेजू ने अपने नन्हे बेटे की आंख-पलक को अपने पौर से छुआ और हाथ थोड़ा ऊपर कर चुटकी चटकाई···होठ गोल कर सीटी बजाई फिर उस पर हाथ हिलाकर टोह ली तो पाया उसके हाथ हवा में ही डोल कर रह गए। बच्चे ने न हाथ बढ़ाए ना किलकारी मारी। बेजू बुझ कर रह गया। उसने फिर टिचकारी मारी—"टिच-टिच-टिच् लल्लू, उजाले देख तेरी मां तुझे अपना-सा समझती है। झेल ले तो इसका हाथ बेटे।" बेजू ने पालने पर झुक कर कहा और निहारो का हाथ थामकर पालने में पड़े बालक के सीने पर तक ले गया कहीं कुछ नहीं। उसने निहारो के हाथों को फिर इधर-उधर किया तो वह नन्हीं-नन्हीं पंइयों से जा लगा उस की छुअन महसूस कर बेजू बोला—ले! अब तो हो गया ना भरोसा कि तेरा उजाला-उजाला है। वह आंख के आगे आई चीज़-मानुस का भान पड़े है उसे···

—तुम कहो हो वो मान लूं—पर ये उसके हाथ नहीं पइयां हैं। और पइयां तो यह वैसे ही दिन भर मारता रहे है।

—अब, तू नहीं माने तो क्या बस किसी का। जब तेरा बेटा बड़ा हो, बोलने लगे, तब उसी से पूछ लीजियो कि अंधे-अंधी का जना-जाया तू खुद अंधा तो नहीं।" बेजू झल्ला उठा।

—अब यूं झल्लाने कोसने से क्या बने है। खुद भी हलकान हो और मुझे भी टीसो···।" निहारो ने होले से बेजू की उंगुलियों के पौर छू दिए। एक दूसरे को डूबकर मन से चाहने का आज तक यही संकेत रहा था उन दोनों के बीच एक-दूसरे की—उंगुलियों के पौर छूकर ही। उन्होंने अंधी आंखों से उजले आकाश के रंगों को बिजली की चमक को बरसात की धनक जो सूरज की किरन को, चांद की चांदनी को देखा था जिया था।

पल दो एक वे एक दूसरे के पौरों पर पौर रखे चुप रहे। तभी निहारो परे होकर बोली—

—ना हो आंखों के डाक्टर को दिखा दो इसे। मुझे भरोसा हो जाएगा। मैं अपने बेटे की आंखों के उजाले को छूकर सब पा जाऊंगी···

—वो ही सही, पर बड़े डाक्टर की बड़ी फ़ीस ! डॉक्टर हम अंधी आंखों वालों से उनके बच्चे की आंखों में रोशनी टोहने—जोहने का भला क्या तो लेगा···थोड़ी चिरौरी कर लेंगे···तो कल सवेरे ही चलेंगे, ठीक ?

—वो सब सही, पर मैं बिना फ़ीस दिए छू-छा की राय डाक्टर से नहीं लूंगी···पूरी फीस देकर अलग मे इसकी आंखों की खूब पड़ताल करवा कर ही मानूंगी, हां !

—फिर फ़ीस के रुपये ?" बेजू ने परेशानी से पूछा।

—मैंने रुपये जुटा रखे हैं···तुम कहोगे कैसी मां है ! डाक्टर ने इसके जनम पर मेरे लिए, इसके लिए, जो दवाइयां लिखी थीं, वो मैने मंगवाई ही नहीं यू हैं मेरे पास रुपये।" निहारो ने हुलस कर कहा तो, बेजू की अंधी आंखें चौड़ा गई।

× × ×

दूसरे दिन वे दोनों, बच्चे के साथ आंखों के बड़े डाक्टर के कमरे के बाहर खड़े थे, लाइन में सब के आगे। देर तक बाट जोहने के बाद खास जूतों की चरमराहट के साथ स्टूल खिसका फिर 'क्रेंकऽ' की आवाज़ के साथ दरवाज़ा खुला और बंद हो गया।

—लो, आ गए डॉक्टर साहब, तुम्हें पुकारूं तो भीतर हो लेना।" चपरासी ने कहा तभी घंटी टन्नाई और चपरासी भीतर हो गया।

पल-छिन छितराने के साथ ही निहारो मन का ऊब-डूब होने लगा। उसकी अंधेरी आंखों में रह-रह कर घुप-चुप होने लगी। उसकी आंखें कभी चौड़ा जातीं—कभी पलक उघड़े रह जाते, तो कभी ऊब-डूब पुतलियों को कंपकंपा कर ढांप लेते। चेहरे पर कभी तनाव रेखाओं में भर जाता तो कभी आशंका उसकी आंखों के नीचे छितराई कलछांई को और गहरा जाती। सीने में धक्-धक् और मन-माथे में चक्कर उसे बेकल बनाए हुए थे। तभी पुकार हुई—"उजाले लाल।"

—हां-हां, निहारो, चल इधर को।" बेजू ने लकड़ी से टोहते हुए उसकी बांह को छूकर कहा।" पर, निहारो चुप, एक दम बेहिल।

—चल, भीतर हो ना, आगे भी बढ़, कहां अटक गयी।" बेजू ने उसकी बांह पकड़ ली।

—नहीं···नहीं मुझे नहीं करवानी ये जांच।" बेजू ने सुना और सकते में आ गया।

—क्यूं ! क्या हो गया ? बौरा गई ! बेटा जनमा तभी से रट थी—"मेरे बच्चे को दीखे भी है या नहीं ? और जब आंख की जांच का टेम आया तो पीछे हो रही···डॉक्टर के दरवाजे से मनाकर रही ?"

—तुम ठीक बोले हो···पर अब जांच नहीं···भगवान के लिए नहीं।" इतना कहकर वह पीछे मुड़कर आगे बढ़ गई।

—पर; क्यूं नहीं, सवेरे से रट लगाये थी—"देर ना हो जाए बड़ा डॉक्टर मिलेगा भी या नहीं।" एकाएक तुझे हो क्या गया निहारो ! बेटे की दवा तोड़ के डाक्टर की फ़ीस भरी···और अब जांच करवाने से ही मुकर रही—हुआ क्या तो तुझे ?" बेजू ने उसकी दोनों बांहें झिंझोड़ कर पूछा।

—"बस जैसा दिया है भगवान ने वैसा ही रहने दो मेरे बच्चे को··· बड़ा होगा, थोड़ा तो इसी से बूझ लूंगी सब।"

—पर डाक्टर से क्यूं ना पूछ लें···आंखों का बड़ा और नामी डाक्टर सामने है।

—जे ही तो बिपद है। कहीं जांच-पड़ताल करके डॉक्टर ने जो कह दिया की मेरा लाल हम तुम जैसा ही है···उसकी आंखों में उजास नहीं तो ···तो मैं उसे पालूंगी-पोसूगी कैसे ?···जीने भर तक की सांसत···"इतना बोल कर निहारो ने बच्चे को कोख सहेजा-तोला और तेज़ी से आगे बढ़ गई। बेजू ठगा सा खड़ा रहा और डॉक्टर का कमरा पीछे छूट गया।

सांस भइ कोयला

"रमली समझ नी पड़े···मजूरी भी कम नी पैसा भी बढ़ती···पेले एक संडासी चवन्नी में उठा देता अब सवा-डेढ़ रुपे से कम अंटी में नी बांधूं उसके बदल···पेले दो-दो पैसे में छेनी के पान धर देता था अब दस-दस पैसे लूं··· पै तेरी घर-गाड़ी नी खिचे मुझसे अब···बोल पैसे टके में बरकत क्यूं नी आज ?" रागू ने बुझती बीड़ी में सांस भरते हुए कहा ।

—नमक में खार हो तो पैसे में बरकत होवे आज ।

—तो गया किधर नमक का खार !

—वो जने-आदमी में आ गया ।

—नमक का खार आदमी में ।

नी तो···देखो नी आदमी का खार आदमी में···बजार हाट में आग लगी है !

—मेरी भट्टी ठंडी धरी है इधर और तू हाट-बजार में आग लगा री ।

—मैं बापुड़ी लगाऊंगी आग ? वो भी हाट-बजार में···देखो नी; आज तो एक कीलो कोयले का पूरा एक रुपा खुलवा लिया इस सिंधी मुए ने··· हम बढ़ाएं मजूरी में एक चवन्नी तो गिराक के माथे सात सल चढ़ें और बजार में एक के दस ले ले बनिया तो कोई नी पूछे ! यूं ही तो मर रिये हम; हाड़ तोड़ मजूरी करके भी ।

—जे ही तो···अब देख; तू-मैं दोनों जुते रेवें दिन भर भट्टी में भला जे तेरे कोई दिन हैं घनवाई करने के ?" रमली ने सुना और अपने उभरे पेट को फटे आंचल से ढांप कर सिमट गई ।

—तो फेर करें कैसे ? तुम ताता लोहा साधो—बनाओ और मैं जो घन नी मारूं, उस पे दनादन चोट नी पड़े, तो लोहा ठंडा नी हो जाये भला । ठंडा हो जाये तो फिर कोयला फूंको—और कोयला तो बाप के मोल···

अइया रे !" रागू ने सुना और कोयले के खीरे-खांटे आंच की ओर सहेजे और रमली ने घन का हत्था साधा ।

× × ×

—जे ऊपर वाला भी ठाला दीखे, उसके पल्ले कोई ढंग का काम नी···जोरू-जांता होता तो चलता उसे पता ।

—अब राम-भगवान को क्यूं कोस रहे···कोसो अपने भाग को ।

—अरे ! अपना भाग तो भट्टी है···पे तू देखे नी; जे बिन बात बरसात क्यूं उंडेल दी उस तेरे भगवान ने ? गूदड़-तप्पड़ तो ठीक पे जो थोड़ा चोकस ना होते, बाप रे । कोयला सब गीला हो जाता तो ?

—वो सब ठीक पे तुम-सा भी कोई है दूजा ! रात भीगे से भोर लगे तक कोयले की बोरी कूं यूं सीने से लगाए गूदड़ से ढांपे रहे, उसे जैसे लाये हो कोई नवेली-नखराली सोला साल की !···कहने को कह गई रमली फिर लजा कर खुद ही आंखें झुका लीं उसने ।

—तुझे सूझे है जे सब रंग-रसिया·· अरे बोल; जो बरखा से कोयला भीग जाता तो होती तड़के भट्टी गरम ?

—देह ठंडी हो जाए तो हो जाए पे भट्टी तो गरम होनी ही है ! देखो हो कैसी चल रही है नाक···कोयले को ढांपा-ओढ़ाया-सहेजा···पर अपना सरीर-सांस···कलेजे में रात ठाड़ बैठ जाती तो !

—अरे ! तो कौन आकाश टूट जाता रागू नी तो कोई फागू लुहार बना देता चिमटा-संडासी···

—वो तो ठीक···पर मैं···मेरा बचवा आगे···

—छोड़ भी अब···सोचने-विचारने वाला जल्दी मरे—ले उठ अब, सुलगा कोयला···चेता भट्टी ।

—वो चाऽ···मनका नी मानने का ।

"वो मैं लाया···लकड़ी सब तर-गन्ना हो गई । भट्टी पर ही धर चाऽ का पानी मैं लाया चा-दूध ।" रागू बोला और जर्मन का गिलास लेकर खड़ा हो गया ।

× × ×

"मायड़ ! भूख···अब तो सेक दे रोटी ।" मनका बिलबिलाया और

रमली के आंचल को बल देने लगा।

—बचवा ! आटा तो सान रखा है, और देख गोभी के ठूंठ भी काट धरे हैं। वस इस सब्बल के सान धर दूं फिर मैं सुस्ताऊं और जे रोटी-बाटी सेक देगी अब्भी इसी आग-अंगार पे।" रागू ने हिरसाये मनकू को ढाढस दी। एक हाथ से सब्बल को एरन पर साधे और दूसरे हाथ से हथोड़े की चोट मारता हुआ वह फिर उमगा—

—हां, लगे तनी लगके···दबक के···तेज लपक के, ठंडी हुई जे तो, जरा दौड़ के हां·· हां···हूं···हूं·· दे···दे और रमली रागू की हांक में जुत कर ताते लोहे पर यूं घन बरसा रही थी जैसे कोई नचनी तान पर नाच रही हो—बिना रुके, एक सांस में, दनादन मार करती, उसकी छाती की धोंकनी में अब सांस बजाने लगी थी—हाऽ हू···हाऽ हू। मिसियाई अंगिया में अंसी छाती छूट कर घन की धमक के साथ डोल-डुलकर उसे और भी थका रही थी। पर रागू था कि सब्बल पर एक ही ताव में सान देने की होंस में जुटा उमगे चला जा रहा था—धें···धें···दे···दे और लपक के···दे-दे·· तभी घन की पकड़ ढीली हुई और रमली ने उसे भू पर टिका परे ठेल दिया। फिर धम्म से जहां की तहां बैठ गई—हांपती-कांपती—पसीने में तर, नाक-मुंह से सांस साधती-बांधती।

—कित्ते कम कोयले में तेने धरवा दी सान इस सब्बल पे···बीच में सांस जो तोड़ देती तो उसे फिर से ताता-राता करना पड़ता और फुंक जाता अंजुरी भर कोयला और···लेऽ अब तू डाल दे रोटी-बाटी और अंगारों पे हंडिया भी धर-छौंक दे। तब तक मैं बीड़ी-पानी कर आऊं, फिर आगे देखेंगे, इतना बोल रागू घुटनों पर हाथ दे धोती झाड़ता उठ खड़ा हुआ।

—विराम कर थोड़ी देर बाद ठिये पर लौटा तो सुना—जे क्या !··· कच्चे के कच्चे टिक्कड़। मनका खिजा खिसियाना बोला था—हां बप्पा भालो, जे गोभी-गट्टा भी सब कच्चा कट इतना कहकर उसने गस्सा थूक दिया।

—बप्पा-पूत को कच्चा-पक्का सूझे। सांस के मोल कोयला मिले जे कौन जाने !" रमली कड़ुआई फिर सिता कर बोली—"अब की खा लियो; सांझ तक लकड़ी सूख-साख जाएगी तो खरा सेक—पका दूंगी। टोह कर;

गिनती के कोयले पड़े हैं बाजू में और अभी राज-मिस्त्री की छेनियों के सान धरनी है।" रागू पहले गरम होने को था; पर जब 'सांस के मोल कोयला' सुना तो चुप कर गया।

× × ×

—लोऽ सुनो; इधर हमने कोयला बचाने की जुगत जोड़ी तो उधर कोयले का भाव और बढ़ा दिया उस सिंधी सगे ने।

—रुपे किलो तो देता ही था; अब ?

—अब किलो का रुपे ऊपर बीस पैसे मांगे है।

—तो फेर हम भी रेट बढ़ा देंगे।

—रेट बढ़ा देंगे ! तुम एकले हो इधर लोहा कूटने वाले ?

—अरे तो और जो हैं, वो भी तो दूजे नहीं, माथा जोड़ के बैठेंगे सब और इक साथ बढ़ा देंगे रेट। आखिर सबों को तो कोयला महंगा ही लाना पड़ेगा अब।

—वो तो ठीक सब अपने हैं···पराया कौन सब मान जाएंगे रेट बढ़ाने को पे अब कोई गाहक आया के टूट पड़ेंगे सब उस पे और जो वो देगा चुपचाप लेके बैठ जायेंगे। खबर नी पड़ने की क्या लिया और क्या दिया।

—मैं तो सोचूं, जे तू-मैं इसे ढब लग के एक ही ताप में ललछौंहे हुए लोह को ताबड़ तोड़ कूट-पीट के काम साध लें तो दिन भर में रुपे बिरोबर कोयला तो बचा ही लेंगे·· तीन-एक महीने तो बाकी होंगे ही अब्बी ?" रागू ने टोह लेते हुए कहा।

—वो तो है ही; पखवारा और बत्ती समझो।

—तो उस हिसाब से जो इस ढब जुटे तो होती कमाई ऊपर सौ रुपे और जुड़ जाएंगे ?

—तो तब पूरे दिन पे भी मैं तुम्हारा घन ही उठाती-उड़ाती खड़ी-मुड़ी रहूंगी मैं···बनेगा वो सब तब दो जीव···पूरे दिनों पे ?

—वो नी बोलूं, सोचूं अबकी बालक-टाबर उधर जच्चा घर में ही होवे तो तुझे तनि जख-आराम मिले।

—क्यूं इदर बदल गया कुछ कोई ?

—वो नी, कपाल तोड़ घाम-लू ऊपर कभी अंधड़-पानी चढ़े-दौड़े है

इधर'''फिर जे अपनी जखमी-जरजर झुग्गी भी तब तक दम तोड़ दे तो अजब नी। बांस कैंची पे तने-टिके टाट टिकेंगे तब के हवा-हर्राटे में।

—वो तो नवा कुछ भी नी, पे इस बेर कोई राजकुंअर आने को है जो उधर अस्पताल जच्चा घर की सोची।

"राजा को राजकूअर प्यारा मुझे मेरी रमली का जाया दुलारा; क्यूं नी, बोलड़ी" कहकर उसने अपनी छुटक अंगुली से रमली की ठुड्डी पर उगे धुआंए तिल को सहला दिया।

—जो तुम जानो, मेरे हिये में तो अमरो भोजी की बात जमी; बोले थी—उधर पानी-पाल के बाएं बाजू सब बेघर गरीब-गुरबा, मजूर-हम्माल राज की जमीन-जगाह हथिया कच्ची बस्ती बना बस रहे। हम भी कच्ची बस्ती के अगुआ गबरू पहलवान को सौ-पचास थमा बित्ता भर जमीन पर क्यूं नी खड़ी कर लें अपनी टपरी-झुग्गी।

—तुम लुगाइयों का खूब चले है भेजा। माना अपने भाग कहां अपना घर-झुग्गी!

—भाग में तो ठंडे लोहे को ताता राता कर पीटना बदा ही है; फेर भी कुछ बदले बने तो बुरा है?

—बुरा! वो नी, वे बेरी जमाना है, बुरे लोग हैं'''मैं और तू हैं।

—हम-तुम भला क्यूं किधर से बुरे? मेनत-मजूरी करें कोई चोरी-चकारी करें'''कम तोलें'''वे भाव बोलें'''लेवें किसी से कुछ, जो बुरे!

—चल वो ठीक, तू भोत अच्छी'''मेरी रामकली—रमली बड़ी मीठी '''तनि चखूं तो'''वह हुलास भरा बोला और सरककर उससे सट गया तो वह परे होती बोली—

—जगत् के सामने चाटोगे-चखोगे मुझे'''यूं ही, तो बोलूं एक टापरी सिर पे होवे तो हिये-जिये का कुछ करें—बैठें; जे भला क्या अध-ढंपे-उघड़े पड़े है लोह-भट्टी की भांत; चौपट। इतना कह रमली अपने आपे को सहेज उससे परे हो गई।

× × ×

लोहा-कूट-कमाई में दो जून मोटा-झोटा खाना भर निकलता था। बचत की तो बात ही भला क्या। रामली के हिये-जिये में कच्ची बस्ती में

बसने की बात ऐसी बैठी कि वह जैसे-तैसे पेट की भूख को टाल-फुसलाकर रोज सांझ को कुछ-न-कुछ पल्ले बांधने पर तुल गई। उसका घरवाला रागू नशे-पत्ते से परे कमर-कस-कमाऊ था बस दो रोटी का भूखा-नजर भर नेह का प्यासा। उसे पाकर रमली निहाल थी। औरों के मरदुओं को देखती और सोचती 'उसका आदमी' सोना है, पे लोहा कूटता है; तो क्या; जो आता है सभी वह सहजे है। उसे तो बीड़ी तमाकू के पैसे भी न्रो देवै। अब जो सहेजना-बचत करना-जोड़ना है तो वो रमली ही करेगी ना? वो क्या तो करेगा—कमाई मरद को भाग लुगाई का···अपने भाग को बदलेगी वो; रागू की लुगाई तो वो है ही···अब उसकी घरवाली बनेगी 'घरवाली' पे 'घर' हो तो ना? 'घर' अब होगा। होके रहेगा अब 'घर' उसका। रमली ने ऐसा और ऐसा और भी कुछ सोचा रात-दिन, तब फिर अमरो भोजी को साथ ले पहलवान से बात भी पक्की कर ली। अब वह थी और थी खरच की कतर-ब्योंत पर कतर-कमी किसमें होती। आता ही क्या था? ले दे कर रोटी-बाटी दाल आलू और नख-डूबे इतना तैल-लून। इनमें से क्या कतर कर बचाये? अब उसने बस कोयला बचाने की ठानी और जुत गई भट्टी के आगे।

इधर ताते लोहे-सरिये को एरिन पर रागू ने धरा नहीं कि रामली ने दनादन घन बरसाये नहीं, कभी-कभी तो वह यू घन बरसाती कि रागू को संडासी साधना कठिन हो जाता उसकी लाग-चाल को यूं बिजली की कड़क-कौंध की ढब में देखा तो रागू ने उसे बरजा भी, पर भला वह कब मानने वाली थी?

छाती की धौंकनी की धमक कम होती। तब रागू की बात का तोड़ देकर रमली कहती—"कोयले का भाव आकाश चढ़ा है, सुना कभी के आलू सस्ता और कोयला महंगा···यूं आने-चार आने की मजूरी पे कोयला फूंकते रहे तो भर लिया पेट और पाल लिए पूत··मरे खरच भी चढ़े आवे है। अब तो थी कोई कोर कसर के कलेजे में मेरे जे कुलबुलाहट और भर गई···बरजा था मैंने 'बे' लाओ···यूं करो·· पे आदमी माने भी।" इतना कहकर उसने जाने कैसी आंखों से रागू को देखा कि वह बोला—

—अब जो तू इलजाम दे कम, बस गरज मरद की होवे···लुगाई तो बस बापुड़ी···

—हां, हां लुगाई तो चीज-बसत ठहरी—पे छोड़ो अब, लो हो गया वो सरिया ताता साधो भी उसे बेफालतू कोयला क्यूं फूंको ? वह घन संभाल कर खड़ी हुई। रागू ने उगते सूरज के पिंड से ताते लोह को संडासी से साध एरन पर रखा और रमली ने उसे मन चाहा रूप देने के लिए घन की जो मार मारना शुरू किया तो धांय-धांय मचा दी।

—तनि रुक भी, कोयला बचाने हेत कलेजा फाड़ बैठेगी अपना, डील संभाल अपना···जे क्या···भूतनी की भांत धमाधम घन उड़ाने में जुटी है तू। रागू ताता होकर चेंटा। रमली थमी। उसने बोलने के लिए मुंह खोला पर बोल तो नहीं फूटे बुक्का भर सांस भरभरा गई।

× × ×

पखवारे भर की उस सांस मार धांसू मजूरी ने रमली को हड्डी उधाड़ दी। कटोरी से मुंह पर छोटी टुचक छेनी-सी नाक निकल आई, आंखों की पुतलियों पर पसीना ढरक आया, छातियां लथड़ा गईं, पीठ में झटके का झुकाव भर गया और पिंडलियों में छूजन दौड़ गई। ज्यों-ज्यों दिन चढ़ते गए। पेट तो फूलता-फैलता गया पर दूजे अंग दुखने-सूखने लगे; उसे यूं सूखती-सुलती देख रागू झुंझला कर बोला—

—देखूं, अपनी काया-कलेजे को फूंक कितना सहेजा मेरी समझू बन्नो ने ?

—नी बचाया-बांधा कुछ भी तो; अजूबा पाल रही मैं ! बिरादरी में अपने मरद के साथ लुगाई काम नी करे भला !

—हां, हां; काम तो लुगाई करै मरद के संग ये तेरी तौर ये कोई भूतनी बन कोई धमाधम घन नी गरजावे-बरसावे कोई लुगाई···फिर ऐसे में जब दो जीव से है तू।

—जीव जुड़े-बढ़ें तो उसके वास्ते भी कुछ जोड़ना-जुटाना पड़े या फेर बस जो है सो धके ?

—अरे ! समझदार की संडासी ! वो मेरे पे छोड़। आगे से तू परे हट भट्टी से···हत्या देगी मेरे कूं ?

—तो फेर घनवाई कौन करने आवेगा मेरा वीरा ?

—तेरे वीरा बाबल का टेहलवा मैं नी···वो छोड़ सब तुझे सोच ? वो

मैं सब निपट लूंगा अकेला।

—संडासी से ताता लोहा एरन पे साध भी लोगे घन भी चला लोगे··· देखा नी कोई बजरंगवली ऐसा तुम में बैठा हो···और फिर कोयला जो कित्ता फुंकेगा यूं ?

—बसऽ अब चप्पर-चूं बंद कर···नी तो मूंडी गरम कर दूंगा आज तेरी···समझी कोयले की महतारी। रागू अब ताव खा गया। रमली ने समझा उसका हेत और सिता गई। फिर आंखों में अनुहार और बातों में मनुहार भर बोली—

—लो तनि गिनो तो भला, कित्ते हुए। इतना कहकर उसने अपनी अंगिया में उरसी नन्हीं-सी पोटली निकाल उसके सामने फैला दी।

—ना, नहीं गिनती मुझे तेरी सांसों की सलवटें।" रागू ने कहा और अपनी पलकों पर तुल आये बोझ को छिपाने के लिए मुंह फेर लिया।

—अब लो भी। गिन भी दो मुझे आती गिनती तो भला मैं करती निहोरे तुम्हारे।" रमली ने होले-से ठुनकते हुए बोल मारे और उसे यहां-वहां से गुदगुदा दिया—चुप-चुप इधर-उधर लख कर।

—बात करना तू जाने। धधकते कोयलों के पतंगों-चिनगों को गिन लेने वाली रमली पैसे-रुपे की गिनती नी जाने ? सच बता, कित्ते हुए। नेह घुला होकर रागू ने पूछा।

—दो बीसी ऊपर पांच हैं···पांच और कर लेते, दो : पूरे पचास हो जावेंगे···फिर बस···तुम जानो आगे और तुम्हारी कमाई···कहोगे तभी झेला दूंगी।

—कैसी तो कपाल खाऊ लुगाई है; अपने हिये-जिये का होस नहीं··· डील देखा है अपना ? कहीं फूंक निकल गई तो नीचा दिखायेगी मुझे भाई-गिरासियों में।

—मैं और तुम्हें नीचा दिखाऊं ! अरे मैंने तो 'अपने' की 'पाग' ऊची ही ऊंची रखने की ठानी है। बस वो ठिकेदार का मुनीम जो इकट्ठी तीन सौ छेनियां दे गया है : उनको 'सान' धरने भर की मजूरी और कर लेने दो। चार-पांच किलो कम कोयले में भी काम सर गया तो पूरे पच्चास रुपे—आधा सौ-मेहा अंटी में होंगे, फिर देखो मेरे को हुआ क्या है, जो

तुम राजसाही लगा रहे,—बचवे के टेम नी चलाया था मैंने घन।

—वो सब ठीक···पे काम की रीत से काम होवे—माई बोलती थी के दो जी से होवे लुगाई थोड़ी-भोत मजूरी में तन ठीक; रहे। ये तू तो घन तोड़ रही।

—लुगाई-टाबर में तुम समझो के वो वडेरी मा···फेर भी अब तनि संभाल के उठाऊंगी घन···जैसा भी तुम बोलोगे।"

× × ×

उधर आकाश के एरन पर ताता-राता सूरज चमका और इधर रमली ने बलती-बोलती लालछन छेनी को सान देने के लिए धबकना-धीमना लगाया। रागू पलटता कि घन तड़ता और छैनी का सिरा फैलकर चौड़ा जाता। उसने उसे पलटा कि धम्म् की करारी चोट पड़ी···तीसरी चोट में पहली फेंट और चौथी-पाचवीं चोट में दूसरी फेंट···फिर पानी में छबक्-छम्म फिर दूसरी छेनी फिर वही लाग लगी मार रमली की जैसे मार के बड़े ओले पड़ रहे हों।

सूरज की ललछांही पीलियाने लगी थी पर छेनियों के सिरों का सूरज एकदम ताता और राता था। रमली की घनघोर घनवाई को देखकर रागू सहमा। उसने 'रुक' उचार कर बरजा पर वह 'हूं' की फूत्कार करके जता गई कि बंधी सांस की लाग को बीच में तोड़ना ठीक नही। "रुकू-ढबूं तो उठे घन में जुती रमली की सांस फालतू होती है।" यह सोच कर ही रागू ने अगली छेनी अंगारों से उठाकर फिर एरन पर धर संडासी से साध ली। और दूसरे हाथ से उस पर खुद भी हथौड़े की चोट मारने लगा। सही सोचकर कि, इसके बाद रमली रुक जायेगी—दम लेगी। उसने कहा भी कि तूने जे ही ठानी है तो चल मैं घनवाई करूं; तू संडासी हथोड़ा संभाल। पर उसने फिर वही 'हूं' की हूंकार भरी उसे एरन की चमक सतह पर कोयले वाले सिंधी की सूरत उभरती दीखी और वह घनवाई में जीवट से जुती रही उस सूरत को पीटती हुई। रागू ने उसकी बेरोक सांस को जो बेढब रीत से फूलते-धुकधु की बंधते देखा तो उसे फिर कड़क कर बरजा और तपी हुई छेनी को एरन से हटाकर पानी में गेर दिया। यह सोचकर कि रामली अब तो थम ही जायेगी। पर रामली

ने थमना-रुकना कब धारा था ! सांसों के धक्के से उठा उसका घन पूरे बल और वेग से खाली एरन पर जो पड़ा तो कहां संभल पाया; वह एरन की चमकदार सतह से फिसल कर यूं बैडोल हुआ कि रमली का ही डील-संतुलन-बिगड़ गया और वह खड़े पैरों पर ही धसक कर ढुल गई। उसकी छाती की धौंकनी में साँस नहीं समा रही थी। तिरसाई चिड़िया की ढब में उसका मुंह खुला था, नथुने फूल गये थे और आंखों में पथरीलापन पैठ गया था। उसका लंहगा-लूगड़ा लाल झक हो भीग-भीग गये थे। कलसाई देह की लोथ सांस की आंच से पिघल कर धूल-माटी में आंसी थी, रागू ने लिथड़ी लोथ को हाथों में सहेजा—पर रमली की देह अब कोयला और सांस ठंडी होकर राख हो चली थी। उधर आकाश में ऊपर चढ़ी सूरज की लोथ भी पीली पड़कर हांपती हुई लंबी सांसें भर रही थी।

सूली पर सिन्दूर

नन्हीं चन्दनिया हथेली पर रची मेहन्दी की महक, चान्द से उजले मासूम माथे पर चमचमाता मोती जड़ा टीका और दूधिया मांग में हंसता गहरा सिन्दूर। वह गुड़ियी-सी दुल्हन अपने से जरा ऊपर निकलते दूल्हे के गुलाबी चीर से बंधी जब ससुराल की देहरी पार कर गयी तो; उसे लगा जैसे खेल-खेल में वह अचानक ही किसी अनजाने घर में आन खड़ी है।

अपनी बड़ी-बड़ी सहमी कजराई आंखों से चारों छोर के पसार को परखने के लिए जो पलक तिरछे किए पास घिरी कुंवारियों ने उसे टोहका दिया और खिलखिलाते बोल मारे—अरी! क्या परचे-परखे···ससुराल है ये तेरी···अब यहीं रहना-बसना है तुझे···वो सामने खिल्लाड़ कन्हैया जो लट्टू घुमा रहा उसी के संग रमना खेलना है···और···और आगे उसके ही बालक-टाबरों को अपना दूध पिलाना है···बोल पूरे होने के साथ ही दीवार धुजाने वाले दहाकों के बीच और तो कुछ वह समझ नहीं पायी पर 'दूध पिलाने वाली' उसे लाल आंचल में छुई-मुई बना पानी-पानी कर गई।

बापू-माई का घर छोड़े पखवाड़ा टल गया तो उसी पलक ढंपी नीर-नहायी पुतलियों में अपने बीरा-बहना के चेहरे चमकने लगे। उनके साथ रचाए गए मनुहार-अनुहार के खेलों को याद कर वह गुमसुम रहने लगी। ससुराल के ओटले नन्ही पेंजनिया झनकाती जब वह आंगन बुहारती तभी उसे सामने वाले नीम के नीचे 'उसका कन्हैया' कंचे उड़ाता दीखता। थोड़ा ठिठक, इधर-उधर देख-भाल कर जब वह सासजी के हाथों ठोड़ी तक ढरकाये सर के पल्लू को आंख-पलक से परे कर वह 'अपने' का खेल देखती और मन-ही-मन मनाने लगती कि वह जीत जाए—कई बार तो उसका मन करता कि उसकी तरफ से वह उसकी हार का दण्ड भर दे···पर···।

और यूं बिन बोले-बिन परसे एक मीठा अपनापन उसने उस खिल्लाड़

कन्हैया से जोड़ लिया और भीतर ही भीतर पुलक उठी, उसे अपना सगा-सलौना बना कर। दहक थी तो इतनी कि जिसे उसने अपना-जान-मानकर अपने आस-बिसास की अंजुरी में मन से साध-सहेजा था, उसे तो मान गुमान ही नहीं था कि 'कोई' क्या कुछ संजो रहा उसके लिए ! उस सांझ तो बड़ा दुःख लगा उसे जब उसने देखा कि उसका 'वो' कबड्डी में गच्चा खा अपने घुटने कुहनी फोड़ बैठा। उसके लहू को धूल में सना देख उसका मन क्या से क्या होने लगा। और वह बावली बन आंगन पार देहरी लांघने वाली थी कि सासजी ने बरज दिया। वह थम गयी, जहां की तहां, चौखट पर-कपाट का पल्ला थामे।

···और आज भी वह जस की तस खड़ी है। बरस बिलमा गए—आठ बरस का भोला बालपन बीत गया और वह सोलह साल का सलोना-समझू तन-मन लिए—आंगन पर देहरी पर कपाट थामे खड़ी है। बस फेर है तो इतना कि तब ससुराल की देहरी-द्वार था और आज पीहर का घर-बार है।

उसके देखते सहेलियां अपने ससुराल गयी—और आयीं। उनके गौने हुए—फिर गयीं और आयीं—आंचल में दूध और गोद में आस लिए। पर वह ससुराल से जो पीहर आयी तो गयी कब ? पीहर में ही ठहर ठुक कर रह गयी।

अपनी सगी-सहेली के गोल गुलाबी ललने के रेशमी घुंघराले बालों से खेलते-खेलते उसके हिये में जाने कैसी हूक उठी कि उसकी आंखों में अंधेरा और माथे में चक्कर भर गए। उसने पलक उघाड़े और एक बौराये-ठहाके के साथ ललने को हवा में उछाल-उछालकर चूमने लगी। सहेली ने उसका यह बावलापन देखा तो आंखें तरेर अपने ललने को उससे झपट कर सीने से लगा लिया। फिर तो उसने ललने के लिए वह छीन-झपट मचाई कि सहेली को वहां से भागना ही पड़ा। उस पर भी वह कहां रुकी ? मेरा बच्चा है··· मेरा ललना है···की रट के साथ वह उसके पीछे लपकी।

बापू-अम्मा ने ब्याही बेटी के ये लच्छन देखे तो उनका माथा ठनका। कुल-लाज के विचार से बिंधकर उसके ससुराल संदेसे पठाये कि समधी अब तो गौना करवायें। जवाब में उलटी मार पड़ी। जवाब आया—"तुम्हारे

जमाई राज तो बम्बई भाग दौड़े—बिना कुछ कहे बताये। उनका कोई अता-पता नहीं हमें। खोज खबर में हम जुटे हैं। पता लगते ही शुभ लिखेंगे।"

उनका पता लगने से पहले ही उसे यह पता लग गया कि उसके 'वो' लापता हैं। बस फिर क्या था उसने वह ठहाका लगाया कि मुंडेर पर बैठा कौआ सहमकर उड़ भागा और उसके पगलाने-बौराने का संदेसा इस गांव से उस गांव जा सुनाया।

× × ×

आज उसे संवारा सजाया गया। उसकी गदराई गोरी हथेलियों पर फिर मेहंदी खिली थी। कपोलों की लाली, आंखों के कजरे से होड़ लेती घूंघट में दिप-दिपा रही थी। उजले ऊंचे माथे पर टिकला झमक झूल रहा था। मांग में मुसकाता सिन्दूर सुहाग के गीतों की लय पर तैरता हवाओं को रंग रहा था।

आज उसके 'वो' उसे लिवाने आये थे। कैसे तो नवल रसिया बने खड़े थे। जैसे मुखड़े पर जागी जवानी की गहरी मसें उनके आपे-ओप को कैसा तो मोहक बना रही थी। गाती हुई सहेलियां उन्हें गीतों का राजा बतला रही थीं। फिल्मी-गीत लिखने ही तो 'वे' बम्बई गए थे। सुथरी चप्पलों में रूपे सुघड़ पैसे से जब उसके नयन लगे तो, लगे ही रह गए। और फिर एकाएक घूंघट हटा कर वह खिल्लाई तो हंसी में डूबे बोल से हवाएं कांप गयीं सहेलियां-कुतियां काटती थीं 'तेरे कन्हैया तो मथुरा चले गए'··· तुझे बिसार रम गए कुब्जा संग हा ऽ···हाऽ···

सब देख समझ के 'वो' सकते में आ गए। संभले तो समझ बेरिन ने उसे उनसे अनजाना-बेगाना बना दिया। 'वो' उसे बीमार-बौराई बता जैसे आए थे वैसे चले गए अकेले···तो फिर कब लौटे ?

× × ×

उसी के संग ब्याही भौजी के जायों के हाथों रूपे आम बौरा कर फल गए। बालपन में उगाया पीपल ऊपर गोखड़े से जा लगा और सहेली का वह ललना छज्जे से उसे 'पगली मौसी' कहता हुआ भाग दौड़ा। तब भी उसके 'वो' नहीं आए। बस बीच में दो बन्द लिफाफे आए। एक उसके

भैया के नाम---जिसमें नाता तोड़ने-छोड़ने के संदेशे-समाचार थे और दूजा उसके खुद के लिए था जिसमें एक मुड़ा कागज धरा था···कोरा कागज··· कलम-रेख से उछला एकदम कोरा कागज। उसने उसे छाती की धुक-धुकी से लगा कई-कई बार तो आंसुओं से या और फिर उस पर काजल-सुरमे की सलाई से बेडोल रेखाएं डालकर बौराई हिरनी मांड दी।

आज कल का सांसा लगा तो कागज मैला हो गया और काजल की हिरनी सांवला कर न जाने कहां भटक गयी। उनका पठाया कागज फिर कोरा कागज बना उसके पास रह गया। और यूं जुग बीत गया। उस बाबुल के घर उतनी उम्र और निकल गयी जितनी उम्र में उसने दुल्हिन बनने का स्वांग रचा था।

दो बीसी बरसों में बीती-रीती काया कुम्हला-कुम्हला गई। "उगते-डूबते सूरज का फेर" उसके चेहरे-मोहरे को धुंधला कर अनछुई झुर्रियों से भर गया। बालों की चांदी मन को पथरा कर समझ को और पगला गई।

× × ×

आज 'वो' नहीं पर 'उनका' बुलावा आया है, और उसे जाना है 'उनके' पास---ससुराजी के गांव, सासजी की देहरी। अब वहां उनमें से कोई भी नहीं। 'वो' अकेले हैं---बीमार और बेबस। ऐसे में याद किया है 'उन्होंने' उसे, अपनी सतफेरी सुहागन बताकर।

भौजी की बहुओं और छोटी बहना की बेटियों ने धीरज बंधा उसे आज फिर झाड़-पोंछ कर संवारा है। मुरझाई-मरी हथेलियों में महावर बखेरा है। मांग की सफेदी में सिंदूर उंडेला है। और नीर डूबे नयनों को काजल की मार देकर जिलाया है। गौने की बेला लाए गए कोरे जोड़े में उसने कलसाई कलाइयों में चूड़ियों की हरियाली जगाई है। और उसे गांव के छोर पर खड़ी बस में ला बिठाया है। बिन बात बुढ़ाई-बुआ-मौसी को हंसते आंसू और रोती हंसी के साथ विदाकर सब लौट गए।

× × ×

ससुराल की धरती पर पग मांडते ही उसका आपा कांप गया। गांव वालों की घूरती आंखें उसके आंचल को भेद रही थीं। बूढ़ल गौना···बूढ़ी दुल्हनिया के मारक बोल देहरी द्वार तक उसका पीछा करते रहे।

आंगन लांघ औसारे में हुई तो दम तोड़ खांसी की खो-खो ने उसे आवाक दी। आंचल समेट खटिया से लगे पगों में माथा डाल वह कच्चे-उखड़े आंगन में बैठ गयी।

"आ गईं तुम···साथ का आदमी टला तो बीमार बेदम बोल सुने। ···जब तुम बौराई थीं मैं स्याना और चतुर था···आज मैं बौराया और बीमार हूं···कहीं तुम स्यानापन मत धार लेना···मैं तुम्हें आज वैसी ही बौराई-बावली अपनाना चाहता हूं···मैंने तुम्हें दरसा-परसा नहीं···आज तुम्हें मैं छूना पाना चाहता हूं···खांसी में डूबे टूटे-टूटे बोल आए। तभी कंकाल कांपा और होले से हाथ हिला अपने पास बुलाया।

उसकी मती जागी और वह सरक कर उनके आगे हो गयी। खटिया पर झूलती, उनकी ठंडी हथेलियों से अपना चेहरा ढांप फफक उठी। तभी उनके हाथों में हरकत हुई और उन्होंने उसके चेहरे को छूने परसने की ढब में हाथ यूं डुलाया कि उसके माथे की बिंदिया ढरक कर नीचे गिर गई— मांग का सिंदूर पुंछ गया। फड़फड़ाहट हुई। उसे लगा हंस उड़ चले! तभी उसने अपने सीने से लगे उनके पठाये कोरे कागज को निकाला और उनके बेदम हाथों में धर दिया। उस पर रची हरनिया कहींबिलमा गयी थी··· दूर···बहुत दूर···

रण-राग

प्रतिशोध···प्रतिशोध···प्रतिशोध···युद्ध···युद्ध···बंबावद अधिपति हल्लू होलनाक ढब में हथेली पर घोंसे मारता हुआ डोल रहा था। उसके पगों की धमक से सभासदों के आसन हिल उठे थे। धनी एवं विस्तीर्ण धवल भवों को छूती उसकी डंकीली मूंछें आंखों में उभरे लाल डोरों को गहरा रही थीं। वार्धक्य ने उसके ऊंचे पूरे डील-डौल में तनिक ढलाव ला दिया था फिर भी हाथी दांत-सी सुडौल ग्रीवा पर सधा उसका विशाल मस्तक विराट मंदिर पर चढ़े भव्य कलश की भांति वीरत्व के ओज से दमक रहा था।

वह एकाएक ही धमाके के साथ थमा और फिर गरजा, "···प्रतिशोध ···प्रतिशोध···युद्ध···युद्ध···जैसे कोई पर्वत निर्झर हड्ड···हड्ड···हड्ड ···के साथ शिखर भेद कर फूटा हो। वह अपमान की आग में फुंक रहा था। उसके सीने में प्रतिशोध का ज्वालामुखी धधक उठा। उसके संगी-साथी वीर भी परिहारों के प्रति वैरभाव से विदग्ध थे। परिहारों ने न केवल हल्लू का वरन समस्त हाड़ा-क्षत्रियों का जो अपमान किया था उसकी मिसाल इतिहास में न थी। हल्लू ने स्वप्न में भी इस बात की कल्पना न की थी कि क्षात्र-धर्मानुमोदित उसका रण-मरण-व्रत इतना बड़ा गुल खिलाएगा और उसकी पगड़ी यूं उछाली जाएगी।

"हाड़ा वीरो! जो हाथियों को अपने हत्थड़ से धराशाई कर दे, अपनी खड्ग की धार में बैरियों के बेड़े डुबो दे···शीश कट जाने पर रण-क्षेत्र में जो खड़ा रहे वही बड़ा वीर है। बड़ा वीर वह नहीं जो कमर में बड़ी तलवार बांधे डोलता है···"हल्लू एक सांस में कह गया। बड़ी तलवार की बात सुनते ही रोपाल की देह झनझना उठी। उसकी तलवार सबसे बड़ी जो थी। उसका हाथ तलवार की मूठ पर जा गिरा और उसकी पकड़

कसती चली गई। यहां तक कि उसकी मुट्ठी से पसीना झरने लगा। उसे अपने बड़े भाई का कथन व्यंग्य-सा लगा, किंतु वह शांत रहा।

"मुझे अपने संस्कारी वीरों के बाहुबल पर पूर्ण विश्वास है। हम आज से ठीक तीन दिन बाद मंडोवर पर धावा बोलेंगे···।" हल्लू थमा और फिर बोला—"यह भिन्न प्रकृति का युद्ध है—अतएव इस युद्ध में बंबावद के सभी वीरों को मैं उलझाना नहीं चाहूंगा...मैंने रण-मरण-याचना के साथ युद्ध की आन फिरवाई थी—अतएव मेरे साथ वे ही वीर प्रस्थान करें जो स्वयं रण-मरण की इच्छा रखते हों। शेष पाटवी राजकुमार चंद्रराज को राजतिलक कर बंबावद के राज-काज में सहायक हों।"

एक दो नहीं अपितु आठ दशकों में व्याप्त अपने यशस्वी संग्रामी जीवन में हल्लू ने बीसियों रण-रचाए थे। अनगिनत जूझारों को तलवार पर तोला था। उसकी युद्ध-लिप्सा; भू-लालसा-जन्य न होकर इस भावना से प्रेरित थी कि युद्ध क्षत्रिय का धर्म है—उसे शांति के क्षणों में भी शस्त्र-धर्मा रहते हुए तलवार भांजते रहना चाहिए। क्षत्रिय काया है और शस्त्र उसकी छाया—फिर भला दोनों में बिलगाव कैसा ?" उसकी मान्यता थी कि खड्ग-दर्पण में ही क्षत्रिय ब्रह्म-दर्शन प्राप्त करता है—रणांगण में शस्त्रों की टंकार से ही उसके भाग्य देवता जागते हैं—और फिर यूं क्षत्रिय को सदैव सशस्त्र युद्ध-सन्नद्ध देखकर बैरी उसकी ओर आंख उठाने का भी साहस नहीं करेंगे। उसका विश्वास था कि मातृभूमि की रक्षार्थ प्राण न्यौछावर करने से इहलोक में सुयश और परलोक में प्रभुत्व प्राप्त होता है। घर में खटिया पर पड़े-पड़े दम तोड़ने से तो यमराज घसीट कर नरक में ले जाते हैं।"

क्षात्र-जीवन-दर्शन के इन्ही आदर्शों को जीता हुआ हल्लू जीतता चला गया था—अनगिनत लड़ाइयां। परन्तु एकाधिक प्राणलेवा विकट युद्धों में, आगे बढ़-बढ़ कर, जूझने पर भी उसके शरीर पर घाव लगना तो दूर कभी कोई खराश तक नहीं आई थी। और वह यूं अपार कीर्ति-लाभ करता हुआ अपने जीवन के बीस कम सौ वर्ष पार कर गया था। शीश श्वेत हो गया था पर उस पर रखी पाग का बांकपन ज्यों का त्यों था।

अपने वार्धक्य से हल्लू चिंतित रहने लगा था। उसे आशंका हो चली

थी कि ढलती हुई अवस्था की हिल्लोल उसकी काया के यशस्वी पोत को कहीं खाट के खारे सागर में न डुबो दे ? उसका संग्रामी मन रणक्षेत्र में तलवारों की धार पर तुली मृत्यु का संस्पर्श कर अंतिम सांस लेने की उमंग से भरा था। यही कारण रहा कि वह आए दिन न्योते-बिन-न्योते के युद्ध अपने सर झेलता था। किंतु रण-मृत्यु उससे रूठी हुई थी और उसका सर आज भी साबुत था। वह रण-छक में छका रहकर भी युद्ध-क्षेत्र में मिलने वाली वीरगति से वंचित रह गया था। जीवन के अंतिम सोपान पर पग रखते ही उसका रण-राग, युद्ध-लिप्सा में परिवर्तित हो गया। रण-मरण की साध ने उसके मस्तिष्क में असंतुलन-सा ला दिया। और उसने समस्त क्षात्र-समाज को ललकारते हुए युद्ध की आन फिरवा दी। इसके उपरांत भी जब उसे कोई प्रत्युत्तर न मिला तो उसने अपने आश्रित चारण कवि सामोर लोहट के शीश पर अपनी पाग रखकर इस रण-गुहार के साथ उसे राजपूताने के राजदरबारों में भेज दिया कि—क्षात्रवीरो ! वृद्ध शस्त्र-व्यवसाई हाड़ा हल्लू की द्वंद्व-युद्ध-याचना स्वीकारें और उसकी रण-मरण की कामना पूरी कर उसे उपकृत करें।

× × ×

कवि सामोर लोहट बंबावद के हाड़ाओं का अयाची-चारण था। उसकी पीढ़ियां हाड़ाओं का यशः स्तवन करती आई थीं। वह इस अवसर को अपने पुण्य-कर्मों का शुभ परिणाम मानकर स्वयं दर्प से भर गया था। किंतु उसकी भूमिका बड़ी गंभीर थी। राजपूताने के विभिन्न अंचलों के क्षात्र-नरेशों के दरबार में उपस्थित होकर उसे अपने स्वामी हाड़ा हल्लू के वीरत्व की दुहाई देते हुए युद्ध की आन फेरना था। और साथ ही चारण कवि-जन्य शिष्टाचार का निर्वाह भी करना था। उसने मार्ग पा लिया था। वह हल्लू की पाग अपने शीश पर रखकर किसी को नमन नहीं करेगा। हां, वीरत्व की प्रतीक उस पाग को उतारकर वह क्षात्र-वीरों के प्रति शिष्टाचार का निर्वाह अवश्य करेगा।

कवि लोहट ने पहले आसपास के ठिकानों की यात्रा की किंतु वीर हल्लू की आन का मान रखने के लिए कोई वीर आगे नहीं आया तो वह जा पहुंचा मंडौर—जहां परिहार राजा हम्मीर राज्य करता था। हम्मीर न

केवल अपनी वीरता अपितु उद्दण्डता के लिए भी दूर-दूर तक जाना जाता जाता था।

कवि लोहट के मंडौर सीमा में पदार्पण से पूर्व ही हम्मीर उसके मंतव्य की टोह पा गया था। उसे बूढ़े हल्लू का रण-मद बड़ा अखरा था। उसकी मरण-आन उसे क्षात्र-जाति का अपमान प्रतीत हुई थी। फिर भी उसने कवि लोहट को राजदूतोचित सम्मान दिया। उसे राजदरबार में उच्चासन पर बिठाया। किंतु जब उसने लोहट को अपने शीश से हल्लू की पाग उतार कर प्रणाम करते देखा तो आग बबूला हो गया। फिर भी शांत रहने का अभिनय करते हुए बोला—

—बंबावद-पति हल्लू की पाग में ऐसा क्या बांकपन है जो अपने रहते तुम्हारे शीश को झुकने नहीं देती—तनिक देखें भला।

—इतना कहकर उसने पाग के लिए हाथ बढ़ाया। लोहट ने आदर-भाव से पाग को उठाकर हम्मीर के हाथों में रख दिया।

—इस पाग में विशेष तो कुछ भी नहीं। सभी क्षात्र-वीरों की पाग में ऐसे ही पेच होते हैं। सभी अपनी पाग ऊंची रखते हैं···किंतु इस पाग का धणी हल्लू आज उनकी पाग उछालने पर उतारू है···वह दंभी है···सठिया गया है···इतना कहकर हम्मीर ने हल्लू की पाग को अपनी म्यान-बंद तलवार की नोक पर धरकर उपेक्षापूर्वक घुमा दिया।

—परिहार राजा! मेरे स्वामी की पाग का अपमान न करें। मेरे रक्त में उनका नमक जाग गया है। लोहट गरजता हुआ अपनी कमर से झूलती तलवार की मूठ पर हाथ मार कर खड़ा हो गया। उसे तना हुआ देख हम्मीर के सभासद भी तन गए।

—अपने प्राणों को सहेजो कवि!—दूत बनकर आए हो—परिहार-कुल की मर्यादा वर्जित करती है—अन्यथा···हम्मीर ने आंखें तरेर कर संकेत किया और दूसरे ही क्षण उसके पार्श्व में एक कुत्ता लाकर खड़ा कर दिया गया।

—चारण! उलटे पैर बंबावद लौट जाओ···हाड़ाओं का बड़बोला-पन लेकर कभी मंडौर की धरा पर पग न रखना—हम्मीर ने फिर ललकारा। देखो! तुम्हारे हल्लू की पाग मैं उसके सही स्थान पर रखता

हूं···उसे भी साथ लेते जाओ। इतना कहकर हम्मीर ने हल्लू की पाग को पास खड़े कुत्ते के सर पर धर दिया और पैर पटक कर उठ खड़ा हुआ। लोहट तलवार खींचकर आगे झपटा तभी सभासदों ने उसे घेर लिया। अब वह आंखों में अंगारे धारे बेबस खड़ा था। जब हम्मीर उसकी ओर थूककर सभाभवन से चला गया तो लोहट मुक्त हुआ। उसने आगे बढ़कर अपने स्वामी की पाग को सहेजा और उसे आंखों से लगाकर अपने शीश पर धारण किया—"परिहारो! हाड़ा राजा की पाग के अपमान का प्रायश्चित, उसका अपने रक्त से प्रक्षालन करके ही कर पाओगे।"

अपमान पगा यह दुःखद समाचार लेकर कवि लोहट बंबावद की सीमा में प्रवेश न कर सका। उसने किसी विध अपने ज्येष्ठ-पुत्र को अपने पास बुलवा कर सारी बात कह सुनाई। उसे हल्लू के पास पठाया और स्वयं अज्ञात-वास को निकल पड़ा।

हल्लू ने जब इस दाहक दुर्घटना की बात सुनी तो वह एकबारगी तो बौखला गया। उसके शरीर में झनझनाहट भर गई। कानों में बर्र की भिनभिनाहट बैठ गई और आंखों से ज्वाला फूटने लगी। प्रात: से लेकर अपराह्न तक वह एक ही शब्द उच्चार रहा था—प्रतिशोध···प्रतिशोध अब उसके मुख से अन्य शब्द फूटा था, वह था—युद्ध··युद्ध··युद्ध।

× × ×

रोपाल हल्लू का मां, जना छोटा भाई था। अपने बड़े भाई के वीरत्व एवं शौर्य पर उसे बड़ा गर्व था—साथ ही उसके प्रति अटूट आदर भाव भी। किंतु जब वह दूर-दूर के चारण भाटों को हल्लू की विरुदावली गाते सुनता, तो उसकी भुजाएं फड़क उठतीं—उसके मन में अपने बड़े भाई से भी बड़े रण-करतब दिखाने की उमंग भर जाती थी, और वह सोचने लगता, "क्या कभी ऐसा दिन भी आएगा जब चारण-बंदीजन केवल उसके शौर्य और कीर्ति का गान करेंगे?"

अब अवसर सामने था—हाड़ाओं के अपमान का···प्रतिशोध का। और युद्ध के आड़े तीन दिन मात्र चौबीस याम, शेष रह गए थे। अपने दादा-भाई हल्लू से विदा लेकर उसने घोड़े को एड़ लगाई और हवा से बातें करने लगा। सरपट दौड़ते घोड़े से आगे उसका मन दौड़ता था—इस चाह में

बसा कि दादा-भाई से पहले रण-मरण का सौभाग्य मैं पाऊं…तो हर-हर गाऊं—अपनी कीर्ति को चार चांद लगाऊं।

अपने ठिकाने भैंसरोड़गढ़ पहुंच कर वह प्राण-प्रण से युद्ध की तैयारियों में जुट गया। युद्धोन्माद उस पर यूं चढ़ा था कि उसके कवच की कड़ियां नहीं जुड़ पा रही थीं। परिहार हम्मीर के दर्प-दलन के निमित्त मंडौर पर चढ़-दौड़ने के समाचार से भैंसरोड़गढ़ में ऐसा उल्लास भर गया था मानो कोई बड़ा पर्व आ जुड़ा हो। दूसरे दिन तक रण-रचने की सारी तैयारियां पूरी कर ली गई।

लाल चूनर में बसी रोपाल की सुहागिन 'सगुणा' स्वयं समर का साज-सामान संवारने में जुटी थी। स्वामी के नीले घोड़े को वह अपने हाथ से सांझ-सवेरे रजका-रिजक दे रही थी।

—क्षत्राणी ! तुम्हारे युद्धोल्लास को देखकर तो मेरी छाती फूल गई है।

—उचित है स्वामी, युद्ध क्षत्रिय की कुल खेती है, उसका वीर-व्यवसाय है। मैं आपकी विजय की कामना करती हूं।

—विजय ही की—जीवन की नहीं ?

—क्षत्रिय विजय के लिए ही जीता है। जीवन के लिए नहीं, पराजित होकर जीना पाप है।

—यह पाप हम नहीं करेंगे, प्राण देकर विजय-वरण करेंगे।

—यही विश्वास है—मेरे चूड़े की लाज आप रखेंगे, इसीलिए मैंने चंदन की चिता पहले ही चुनवा ली है। देखेंगे-आप ? इतना कहकर वह गढ़ी के पूर्वी खंड में स्थित जल-कुण्ड की ओर बढ़ चली—"आपके धारा-तीर्थ में स्नान करते ही मैं आपके शीश या फिर आपकी पाग के साथ जलती चिता में प्रवेश कर जाऊंगी और स्वर्ग में अप्सराओं के साथ रमण का अवसर मैं आपको नहीं दूंगी।"

रोपाल ने देखा—चंदन के लट्ठों को चुनकर एक बड़ी चिता सजाई गई है—अगर-कपूर तक जुटा लिया गया है। पास ही नारियल का ढेर है। तभी उसकी आंख रानी की खिली स्वर्ग-बेल-सी काया पर जा टिकी—वह होठों में मुस्कान समेटे उन्नत-शीश गर्व-भाव से उसके सामने खड़ी थी।

—चांदी-सी देह, सोने के थाल-सा दमकता चेहरा, हीरक कनी-से नैन और अलौकिक रूप-वैभव के समेटे हुए बसंत-बहार-सा यह आंचल; क्या धधकती आग में भस्म करने के लिए बना है ?

—प्राणनाथ ! आप यह क्या कह रहे हैं ? रण-दुंदुभि के बीच आंखें खोलकर तलवारों की छाया में क्षत्राणी का दूध पीकर परवान चढ़ने वाले वीर से मैं क्या सुन रही हूं ? कहीं रूप की धूप मोह तो नहीं जगा गई ?

—नहीं···पर पता नहीं मैं क्यों यह सब सोचने लगा ? युद्ध के पहले ही चिता देखकर मन में तनिक शिथिल भाव जाग उठा है ।

—शिथिलता और वीरता-राख और चिंगारी का भला क्या मेल ? आपकी तलवार कहीं काठ तो नहीं खा गई ?

—मेरी तलवार काठ नहीं कबंधों-बिना शीश के वीरों को खाएगी··· पर अभी तो तुम्हारी रूप-छवि आंखों में भर गई है ।

—मेरी रूप-छवि को पलकों से बाहर धकेल दो और अपनी आंखों में अपनी मां के दूध की दमक और पुरखों के ओज को भरो, स्वामी । इतना कहकर सगुणा आगे बढ़ गई । रोपाल भी साथ-साथ चला ।

× × ×

रात का तीसरा पहर—पूरी गढ़ी जाग खड़ी हुई—जब-तब उठने वाली तलवारों की टकारों से गढ़ी गूंजने लगी—हुतात्मा वीरों के गीत गुन-गुनाते हुए योद्धा कमर कसने लगे—घोड़े हिनहिनाते हुए अपनी टापों से ज़मीन गिराने लगे ।

वीर बाने में सुसज्जित रोपाल युद्ध-दूल्हा बना खड़ा था । केसरिया पाग में बंधा मौर उसके उजले चौड़े माथे पर झिलमिला रहा था । सगुणा केसरिया जोड़े में बसी आरती का थाल लिए उसके सामने खड़ी थी । उसने जय-तिलक के लिए हाथ उसके मस्तक की ओर बढ़ाया ही था कि रोपाल ने उसका रोली रचा हाथ थामकर अपने सीने से लगा लिया ।

—श्रृंगार और अंगार से सजी तुम्हारी यह छवि आज रात-भर आंखों में बसी रही । रूपमयी ! इस समय भी मुझे अपने चारों ओर तुम्हीं तुम दिखाई दे रही हो—तुम्हें अपनी नयन पुतलियों में बसाए मैं कैसे रण-रचाऊंगा ? समझ में नहीं आता । रानी ! रूप का मोह जाग गया है—

तुमने कल ठीक ही कहा था।

—रणोन्मुख राजपूत और रूप-राग, नारी मोह ? मैं क्या सुन रही हूं ? मोह के विचार से ही मेरे और आपके कुल को कलंक लगता है—नाथ !

—मैं सब समझ रहा हूं पर···मेरी वीर-गति के पहले ही तुमने अपनी चिता सजाकर मेरे मोह को जगा दिया है। तुमने यह क्या किया सगुण ?

—वीर-क्षत्राणी के सती-धर्म के निर्वाह के आयोजन को देखकर आप मोह-पाश में बंध जाएंगे·· कायरता की बात करेंगे – ऐसा मैं सोच भी नहीं सकती।

—रानी ! कायरता का कलंक न धरो। स्पष्ट ही कह दूं ? मैंने, आज के युद्ध में अपनी वीरता और शौर्य का कीर्तिमान स्थापित करने का प्रण लिया है—आज के युद्ध में मैं दादा भाई से भी आगे बढ़कर रण-रचाने के लिए कृत संकल्प हूं—-बस यही आशंका है कि शत्रु-शीश-दलन की घड़ी में तुम्हारी रूप-छवि कहीं आंखों में झमक गई तो ? मेरे भाले की अणी का वार विफल न हो जाए ? बस और कुछ नहीं।

—'प्राणेश्वर ! क्षमा करें। मैं आपके वीर-धर्म की पूर्ति में बाधा बनकर नही जीना चाहती। यदि मेरे प्रति जागा आपका मोह मेरे जीतेजी सती होने से मरता हो तो मैं अभी चिता धधकाकर उसमें कूद जाती हूं—इतना कहकर उसने रोपाल के माथे पर कुंकुम-अक्षत का टीका कर चरण-स्पर्श किया और बिजली की गति से चिता की ओर दौड़ पड़ी।

—रुको—रुको—सगुणा ! रुको। रोपाल उसके पीछे लपका। तब तक वह चिता पर आरुढ़ हो चुकी थी।

—रानी ! क्या कर रही हो ? रण-प्रस्थान की बेला में शुद्ध-मन से मैंने तुम्हें अपनी भावना से अवगत कराना चाहा था। बस ! मेरा कोई और आशय नहीं था। चिता से उतर आओ।

—चिता पर चढ़ी क्षत्राणी और रण-क्षेत्र में उतरा हुआ वीर अपने प्रण की पूर्ति करके ही रहते हैं। अब मैं चिता नहीं छोड़ूंगी।

सु सुनो ! सिंधु-राग छिड़ गया है—प्रस्थान की घड़ी आ पहुंची है। उतर आओ और शीघ्र ही मुझे विदा करो।

—मैं आपको विदा कर चुकी। आपके माथे पर दीपता जय-तिलक इसका साक्षी है। अब आप युद्ध के लिए प्रस्थान करें—बस अपनी पाग मेरी गोद में रख दें।

—क्षत्राणी ! तुम यह सब क्या कह रही हो ? आओ और मुझे मुस्करा कर विदा करो। अपने चूड़े का बल मुझे दो।

—एक सती की समस्त ज्वलंत शुभ-कामनाएं—उसके चूड़े का बल आपके साथ है। बस अब अपनी पाग मेरी कोख में रख दें और अपने हाथ से चिता को अग्निदान कर दें। बस यही मेरी आपसे विनती है।

—नहीं; यह सब मुझसे नहीं होगा। देखो ! आकाश में अरुणिम आलोक भर गया है। प्रस्थान का शुभ-मुहूर्त टला जा रहा है। तुम मुझे कलंक से बचाओ...मैं तुम्हें छूकर ही प्रस्थान करना चाहता हूं।

—मेरा स्पर्श अब आपको स्वर्ग में ही मिलेगा, जब आप वहां रक्त रंगे आएंगे, यदि आपने पाग न दी तो मैं ठंडी चिता में ही, सर पटक, कर प्राण दे दूंगी, इस पाप के भागी आप होंगे। क्षत्रिय युद्ध को प्रस्थान करने से पूर्व दान-पुण्य करता है—पाप नहीं। मुझे अपनी पाग का दान दीजिये स्वामी ! आप विजयी होंगे।

प्रायाण वाद्य बज चुके थे। कसा हुआ घोड़ा पास खड़ा था। अब पल भर रुका नहीं जा सकता। रोपाल ने अपनी पाग आगे बढ़कर रानी की गोद में रख दी और तेजी से मुड़ गया। तभी रानी ने पुकारा--अंतिम दान और करें नाथ ! घी—अगर चिता पर बिखेर कर अग्नि प्रज्वलित कर दें—मैं अमर हो जाऊंगी।

अब और कुछ न कह रोपाल ने घी का कनस्तर चिता पर औंधा दिया और अगर-धूप बिखेरकर जलती हुई लकड़ी उसमें डाल दी। दो एक पल में लपट रानी के आंचल में भर गई। रानी के मुंह से 'हरिओम् हरिओम्' का मंत्र फूट पड़ा, तभी रोपाल ने घोड़े की पीठ पर चढ़कर एड़ लगा दी। जब वह गढ़ी के नीचे उतरकर अपने सैन्य-दल के सामने आकर हरावल में सम्मिलित हुआ तो गढ़ी में से उठी चिता की लपटें आकाश की ओर उठ रही थीं। धरती से आकाश तक एक अग्नि-पथ-सा बन गया था। 'यही पथ स्वर्ग को जाता है'—यह भाव रोपाल के मन में कौंध गया।

घोड़े पर सवार रोपाल का मन धधक रहा था। उसकी आंखों से लपटें निकल रही थीं। वह चाहता था कि घोड़े के पंख लग जाएं और वह शत्रु सेना के सामने जाकर अकेला ही डट जाए। उसने रण से विमुख न होने के प्रण के साक्ष्य में अपने पैर में लोहे का भारी कड़ा डाल रखा था। घोड़े को अपनी जंघाओं से दबाकर उसकी पीठ से अपना सीना सटाये वह वायु-वेग से आगे बढ़ा चला जा रहा था। सूरज आधे आकाश भी न चढ़ा था कि हल्लू अपने दल-बल सहित शत्रु सीमा पर जा पहुंचा। अपने से पहले वहां रोपाल को देखकर बड़े भाई हल्लू को, आश्चर्य के साथ, गर्व की अनुभूति हुई। बंबावद के रण-पारंगत सैनिक एकत्र थे। हल्लू सबसे आगे था—रोपाल मध्य भाग की कमान संभाले था। सभी सैनिक युद्ध के लिए उतावले हो रहे थे। तभी एक श्वेत ध्वजा गढ़ पर तने आकाश में लहराती हुई दिखाई दी। श्वेत-ध्वजा को देख रोपाल पर बिजली-सी गिरी। उसकी आंखों में काले-पीले चक्कर घूमने लगे। वह घोड़े की पीठ से गिरने को हुआ कि संभल गया। श्वेत-ध्वज युद्ध का नहीं संधि का संकेत था।

रोपाल ने लगाम खींचकर घोड़े को वेग से मोड़ा; हल्की एड़ लगाकर हल्लू के सामने जा पहुंचा और शिष्टाचारपूर्वक बोला—"दादू राजा! कहीं सुलह-संधि मत कर लेना। आज के युद्ध में अभूतपूर्व शौर्य एवं वीरता का कीर्तिमान स्थापित करने के लिए मैं अपनी धर्म-पत्नी को जीवित ही चिता पर चढ़ा आया हूं।" यह सुनना था कि हल्लू आग बबूला होकर बोला—"यह तुमने क्या किया? क्षात्र-धर्म यह तो नहीं कहता—और फिर युद्ध में संधि-संकट सब चलते ही हैं।" हल्लू की बात का रोपाल कोई उत्तर दे तभी मंडोर सेनापति के साथ शत्रु-दूत वहां आ पहुंचे। उन्होंने निवेदन किया—"बंबावद नरेश आपका विरुद स्वीकार करते हैं और आवेश में उनसे आपके प्रति जो अपमान बन पड़ा; इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हैं—पश्चात्ताप-स्वरूप राजकुमारी का हाथ भी आपको देना चाहते हैं—राजमाता का इसके लिए विशेष आग्रह है। अब 'श्रीजी' हमारे सम्मान्य अतिथि हैं।" प्रस्ताव सुनकर हल्लू का युद्धोन्माद तनिक शिथिल हुआ। अपने सैनिकों को थमने का आदेश दे वह दूतों के साथ राज महलों की ओर चल पड़ा। उसने आग्रह करके रोपाल को भी अपने साथ ले लिया।

हम्मीर ने तोपों की गड़गड़ाहट के साथ हल्लू और रोपाल का स्वागत किया। दरबार में अपने आसन के समीप हल्लू को आसन देकर अपने भाई-बेटों में रोपाल को जगह दी। पहले स्वयं हस्ताक्षर करके संधि-पत्र भेंट किया और फिर राजकुमारी का हाथ देने का प्रस्ताव किया।

—"मैं तो बुढ़ा गया—हथलेवा नहीं मुझे तो रण-मरण इष्ट है। अलबत्ता मेरे अनुज वीर रोपाल के लिए मैं राजकुमारी का हाथ मांग सकता हूं।" हल्लू के ये शब्द रोपाल के कानों में विषबूंद की भांति गिरे। राज-मर्यादा उसे रोके हुए थी। युद्ध अथवा संधि के विषय में कुछ कहना उसके अधिकार के बाहर की बात थी। तथापि, ज्योंही हल्लू ने उसके विवाह का प्रस्ताव किया। वह झटके से उठ खड़ा हुआ। उसको आंखों में चिता धधक रही थी—जिसमें उसकी रानी जलता आंचल लिए होले-होले मुसकराती हुई 'हरि-हरि' उच्चार रही थी—मानो व्यंग्य कर रही हो। उसका रक्त खौलने लगा और उसकी नसें फूलने लगीं। अब उसने मंगल-ध्वनि को बरज कर विनीत भाव से निवेदन किया—"राजन दादा! आप जानते हैं मैं अपनी धर्म-पत्नी को जीवित जलती चिता पर चढ़ाकर आया हूं। युद्ध मेरा प्रण है। उसकी पूर्ति तो आज होनी ही है। मैं आपकी आज्ञा से उपस्थित सभी वीरों को युद्ध के लिए ललकारता हूं। है कोई माई का लाल राजपूत, जो अकेले या सामूहिक रूप से मुझसे भिड़ने को मैदान में उतर आये।" थोड़ी देर के लिए दरबार में सन्नाटा छा गया। सब शांत—जैसे काठ की मूरत हों। "मैं उपस्थित वीरों से युद्ध-दान चाहता हूं।" उसका स्वर फिर गूंजा। सभासद अब भी चुप थे। "क्या राजपूत इतने युद्ध-विमुख हो चले हैं कि घर आये वीर को युद्ध भी दान न कर सकें।" उसके स्वर में अब ललकार थी। उसने मूंछों पर हाथ रखा और तलवार खींचकर बीच दरबार में जा खड़ा हुआ। तिस पर भी सभासदों के बीच चुप्पी रही तो हल्लू स्वयं तलवार की मूठ पर हाथ मारकर अपने आसन से उठा—

—"अतिथि-सत्कार उनकी मान-मनुहार-क्षत्रियों का परम धर्म है—और फिर रोपाल तो युद्ध-याचना कर रहा है। आप रण-वैराग्य धारण किये हैं तो एक क्षत्रिय के नाते उसके मरण-व्रत की पूर्ति के निमित्त मैं स्वयं

को उसके सम्मुख प्रस्तुत करता हूं। इस वीर-गर्जना के साथ तलवार खींच कर हल्लू सभा-भवन के बीच जा खड़ा हुआ—"भाई रोपाल ! उठाओ शस्त्र,—उसने भरे गले से कहा—"आ; मेरे रक्त-दूध के संगी; हम परस्पर रण-मरण की कामना पूरी करें।"

दादू आन ! रोपाल तनिक विचलित-सा हुआ पर दूसरे ही क्षण खर्ऽऽ की ध्वनि-रेख खींचती हुई एक तलवार नागिन-सी लपलपाने लगी—"रुकें राजन ! आप परिहार-वंश को यूं कलंकित न करें"—एक बोल फूटा और दूसरे क्षण मंडोर का छोटा राजकुमार रोपाल और हल्लू, दोनों भाइयों के, बीच आ धमका—

"परिहारों के आतिथ्य सत्कार को आप उनकी कायरता न समझें। मैं आपकी युद्ध-कामना की पूर्ति हेतु सम्मुख हूं।" इतना कहकर कुमार ने सिंहासनासीन अपने पिता हम्मीर को नमन किया और नंगी तलवार ताने पग रोप कर खड़ा हो गया। उसकी आंखों में एक ही साथ विनय एवं वीरत्व का भाव देखकर हल्लू ने उसकी पीठ थपथपाई और अपने आसन पर जा बैठा। तभी रोपाल ने उस नरनाहर को अपने अंक में भर लिया। परिहार राजकुमार उसके चरण-स्पर्श की मुद्रा में झुकता-सा लगा। पल दो-एक के अंतराल में वे दोनों वीर तलवार खींचकर आमने-सामने खड़े थे—तभी रोपाल ने राजकुमार से आग्रह किया—

—वीर ! तुम वय में मुझसे छोटे हो, पहले तुम वार करो।

—नहीं, आप हमारे अतिथि हैं, पहले आप शस्त्र संघात करें।

— नहीं युवक ! यह क्षात्र-मर्यादा का उल्लंघन है—पहले तुम ही चलाओ तलवार।

—क्षमा करें परिहार कभी अतिथि पर पहले तलवार नहीं तौलता। इस युद्ध मनुहार को ठहरा हुआ देखकर हल्लू ने हस्तक्षेप किया और बोला—

परिहार-कुल-दीपक ! मैं अपने वार्धक्य की दुहाई देता हूं। आग्रह करता हूं कि कनिष्ठ वीर होने के नाते रोपाल पर पहला वार तुम करो। यह सुनकर परिहार राजकुमार तलवार तौलकर सन्नध हुआ। और रोपाल सचेत। "ठहरो कुमार; यह द्वन्द्व युद्ध मेरे भाग का है। तुम इसमें भागी-

दार न बनो"—एकाएक ही परिहार हम्मीर के बोल फूटे और वह तलवार तौलता हुआ अपने आसन से उतर आया। एक क्षण के लिए वातावरण में सन्नाटा छा गया। अब रोपाल के आगे हम्मीर खड़ा था। उसने आगे बढ़कर उसकी भुजा थपथपाई और बोला—"पाहुन ! जोड़ बराबर की रहे तो विजय रसीली हो जाती है। चलो, करो वार।" और वह वार झेलने को सन्नध हुआ। रोपाल ने हल्लू की ओर दृष्टि निक्षेप किया और उसकी अनुमति पाकर लोहे-से-लोहा बजा दिया। रोपाल के वार में विद्युत वेग था तो हम्मीर की क्षमता में पर्वत-स्थैर्य। रोपाल पगों पर उछल-उछल कर शिखर-भंग सक्षम प्रहार करता था तो प्रतिपक्षी अद्‌भुत संवेग से उन्हें निरस्त कर देता था। दोनों प्रतिद्वंद्वियों के मुख विजय-लाभ की लालसा से आरक्त थे—किंतु ईर्ष्या-द्वेष का कालुष्य वहां कहीं न था। एक झनकार झाड़ता झपाटा रोपाल की ओर से हुआ और हम्मीर की तलवार टूटकर आधी रह गई। तभी उसने सिंह-वेग से अपनी कमर में बंधी कटारें खींच लीं। रोपाल ने भी तलवार फेंककर कटारें निकाल लीं—और अब दोनों राजपूत द्वंद्व-युद्ध पर उतर आये। फिर वही वार-पर-वार और घात पर घात—इस क्षण हम्मीर का वार रोपाल के मस्तक पर बैठा। रक्त का फुहारा फूटा और उसकी ग्रीवा एक ओर झूल गई और तभी ढहते हुए रोपाल ने जो वार किया तो हम्मीर की आंतड़ियां बाहर आ गईं। क्षण-समूह सरके कि दोनों वीर धराधीन हो तड़पने लगे—दोनों की रक्त-धार परस्पर स्वर्थ कर गल बहियां मिलने लगीं। पथराई आंखों में एक-दूसरे की वीर-छवि उभरी। उपस्थित क्षात्र-समाज इनकी ओर बढ़ा पर अब तेज उड़ चला था और दोनों की वीर देह जम गई थीं—स्थिर रक्त में।

परिहार कुमार के हाथों में अपने पिता की एक स्नात देह थी और बूढ़े हल्लू के हाथों में अपने छोटे भाई का कटा शीश।

—दाता ! मेरे भाग्य का यश आप ले चले। भंडोर कुमार बिलखने लगा।

—भाई। रण-मरण का व्रत मुझसे छीन कर तू यशस्वी हो गया।" हल्लू की आंखें सूखे आंसू पलकों पर साधे झुक गईं। थोड़ी देर हल्लू रोपाल की ठंडी देह पर झुका बैठा रहा। फिर शीश उठा कुमार की पीठ पर हाथ

रख सांत्वना देता हुआ बोला—

> राहब, उठ्ठ कमाणगर ! मूंछ मरोड़ म रोय ।
> मरदां मरणा हक्क है, रोणा हक्क न होय ।।

—धैर्य धरो कुमार ! सौभाग्यशाली है हम्मीर कि रण-राग उच्चार वीर-गति पा गए। रोपाल भी बड़ भागा है कि कीर्ति-कथा छोड़ गया। हत-भागा हूं मैं जो सही-साबुत खड़ा हूं—रण-मरण की कामना में जलता हुआ···अब मैं और किससे रण-याचना करूं ? हल्लू मन-ही-मन बुदबुदाया उसने अपनी कमर पेटी में खुभी कटार निकाली और उसे हवा में खींचते हुए अपने सीने में पार कर ली। उसके रक्त-रंजित अंतिम शब्द थे—"रण-मरण नहीं दैव, तो शस्त्र-मरण ही लो···हरि···हरि···"

कुंआरा सफ़र

टन्···न···न···नड कालबेल झनकर गुनगुनाई और उस छोटे-से कमरे में उन्हें अपने होने का अहसास हुआ। कौन हो सकता है ? इतने होले से बेल-बटन पर हाथ रखने वाला तो उनके अपने दायरे में कोई नहीं। टन्··· टन्···टन्···इस बार दबाव पहले से कहीं गहरा था। उन्होंने बुशर्ट की आस्तीनों में हाथ डालते हुए 'आया' उच्चारा और दरवाज़े की तरफ़ बढ़ गए। दरवाज़ा खोलते ही आदतन कहा, 'आइए।' पर आने वाले पर जो नज़र गई तो ठिठक कर रह गए—सामने एक अजनबी युवती सूटकेस थामे खड़ी थी—उम्र यही कोई पच्चीस-सत्ताईस-ठीक उनके बराबर।

—आप···। कहिए किसे पूछती हैं ? अचकचाकर उन्होंने पूछा···। कालबेल के नीचे लगी नेम-प्लेट शायद सही है।

—ओह···आइए···आइए···इतना कह कर उन्होंने आगे बढ़ कर सूटकेस थाम लिया और लहजे को जरा मुलायम औ मीठा बना कर बोले—बैठिए-बैठिए।

—जी—जी—के झिझके स्वर में स्वागत् को स्वीकारते हुए उसने अपने ललाट पर बिखर आई लट को संवारा और आंचल सहेज कर कमरे में दाख़िल हो गई।

—दरअसल यहां मैं ही हूं—माता जी उधर हैं···उस कमरे में—आप इतमिनान से बैठिए···श्यामजी बिन बुलाए अनजान मेहमान को सहज भाव से लेने की जुगत में कह गए।

मेरा नाम अनूपा है···दिल्ली से आ रही हूं···उसने कमरे को उखड़ी-बिखरी सुघड़ता का जायजा लेते हुए कहा—। अब उसकी निगाह सामने टेबल पर बिखरे पत्रों और फोटो की गिड्डी पर जम गई थी।

—मेरा भी पत्र और साथ मैं···शायद आपको मिला होगा उसने

टेबल के शीशे के नीचे लगे फोटो और इधर-उधर बिखरे···किताबों में खुसे पत्रों पर उचटती निगाह डालते हुए पूछा। और फिर एकदम बात का रुख बदलते हुए कह गई·· इधर एकदम···जल्दी में आना हो गया··· सुना-पढ़ा था उदयपुर बहुत सुन्दर है···झीलों का नगर पर मेरे लिए एकदम अजाना···सोचा आपका ही दरवाज़ा खटखटाऊं···मुझे दो दिन पहले ही उदयपुर यूनिवर्सिटी से इंटरव्यू 'काल' मिला है ··उसने थोड़े में सब कह-जता दिया। श्याम जी के सकपकाए चेहरे पर से उसने अपनी निगाह छिटका ली और पास रखी पुस्तक उठा कर सहज होने का उपक्रम करने लगी। फिर सामने रेक में लगी भारी-भरकम पुस्तकों के टाइटल पढ़ने में लगी थी कि उसने सुना।

—अच्छा किया आपने···उदयपुर-सुन्दर है बहुत सुन्दर—कब है आपका इण्टरव्यू ? अब उसका स्वर संयत हो चला था।

—इन्टरव्यू ?···कल···सोमवार को साढ़े-दस बजे···अगर आप किसी ढंग के होटल में मेरे लिए एक कमरा···

—ऐसी क्या बात है यहीं रहिए···आपका घर है···माता जी हैं, बीमार उस कमरे में,···फिर आज दीदी भी आ जायेंगी। श्यामजी ने आव-भगत के लहजे में कहा।

—धन्यवाद · महरबानी···पर···। तभी बाजू के कमरे से खांसने-कराहने की आवाज़ आई और श्यामजी आया कहकर उठ गए।

कोई पांच मिनिट बाद आए और अकुलाहट मे बोले—

—माता जी—अस्थमा का दौरा पड़ा है—गठिया का भी जोर है—डायरिया भी···मोतियाबिंद का आपरेशन करवाया है···आंखों से पट्टी भी नहीं हटी···आप बैठिए···मकान मालकिन और सब कहीं ब्याह में गए हैं · आप उधर दाहिनी तरफ बाथरूम है···मैं डाक्टर से दवाई···बस समझिए गया और आया···वह मशीन की तरह बोले और बिना हां-ना सुने दरवाज़े के बाहर हो गए। फिर साइकिल के स्टैंड से उतरने भर की आवाज़ आई।

—कहां तो आ गई मैं···? अनजाना नया · शहर···नयी जगह··· पर यहां कौन मुझे निगल जाता···पढ़-लिखकर रही बोड़म···एक रात की

तो बात थी···कहीं भी देखकर किसी ढंग के धर्मशाला-होटल में टिक सकती थी। भैया ने साथ आने के लिए कितनी ज़िद की थी। कहता था बारह बरस का हुआ तो क्या, हूं तो आदमी···पर डबल किराए—खर्चे की बात सोचकर ही टाल गई···सोच में सोई थी कि फिर खांसने-कराहने की आवाज़ आई। उससे रहा नहीं गया और वह पल्ला संभाल कर दूसरे कमरे में दाखिल हुई। बीमार बुढ़िया के कुंआरे बेटे की गिरस्ती फिर सामने फैली थी।

सामने दीवार से लगी खाट पर हाथों के सहारे उठंग हुई साठ-पैंसठ साल की बुढ़िया खांस-खांस कर निढाल हुई जा रही थी। उसने तेजी से बढ़कर सहारा दिया। और होले-होले पीठ सहलाने लगी। फिर तिपाई पर रखी सुराही से पानी उंडेल गिलास होंठों से लगा दिया। थोड़ी तसल्ली हुई तो आंखों के आगे से लगी हरी चिंदिया को ठीक करते हुए पूछा—

—कौन बहू?

—जी नहीं।

—तो जसवन्ती है···अपने से तो पराये भले···जाने कौन पाप किए···दीदों में अंधेरा अट गया···फूट ही जाते तो। बड़े बेटा—बहू पूछते नहीं और ब्याह जोग कुंआरा बेटा मां का साड़ी···पल्ला सहजे-संभाले···कोई अच्छी बात है···बेटी तू ही मुझे साड़ी बदलवा दे···कोई कसर थी···एक रोग और···इतना कह मांजी अपने पैरों पर पड़े कंबल को टटोल कर हटाने लगीं। अनूपा ने सामने तार पर फैले साड़ी ब्लाउज को सहेजा। किवाड़ सटाकर मांजी को साड़ी बदलवाने लगी। उनके बिस्तर कपड़े ठीक कर उसने उन्हें पानी पिलाया फिर सहारा देकर लिटा दिया। श्यामजी लौटे नहीं थे। कमरे के पसार पर निगाह डाली तो घर भूतों का डेरा लगा। पानी बुझे गीले कोयलों के पास केरोसीन नहाया स्टोव पड़ा था। आसपास बरतन बिखरे थे। मसाले के कुलिया-डिब्बे खुले पड़े थे। एक थाली में अधबिने चावल फैले थे चाय का पैकट शक्कर के डिब्बे में औंधा हो गया था···पास पानी की टूंटी···शू-शू कर रही थी। उसे पूरी तरह बंद नहीं किया गया था। अनूपा से यह सब देखा नहीं गया। उसके माथे पर सलवटें उभरीं—वह आयें उसके पहले यह सब समेट-

सहेज कर सफाई नहीं की जा सकती ? सोचे गए सवाल का जबाव उभरने से पहले ही वह छोटे कमरे में गई और अपना सूटकेस लेकर फिर लौट आई। कल्याण के पुराने अंकों को एक ठौर करके उसने ताक में जगह बनाई। वहां अपना सूटकेस जमाकर खोला और पेस्ट-ब्रश और तौलिया लेकर बाथरूम की ओर मुड़ गई। हाथ-मुंह धोकर चटपट वहां से निकली और रसोई के कोने में जाकर डट गई। स्टोव में खुसी पिन हटाकर बर्नर को साफ किया। फिर उसे सुलगा कर भभका दिया। तुरत-फुरत चावल साफ किए। सामने जमे डिब्बों को बजाकर दाल निकाली और उसे साफकर अलग रखा फिर बिखरी चीजें समेटने लगी। पतीली का ढक्कन बजने लगा तो शक्कर उसमें छोड़ थोड़ी देर बाद चाय डाल दी।

दाल चावल वगैरा प्रेशर कूकर में रख उसे बंद कर स्टोव पर चढ़ा दिया। फिर कप बस्सी धोकर चाय ढाली।

—माजी चाय…उसने कप तिपाई पर रखते हुए कहा और उन्हें सहारा दे पीछे तकिया लगाकर बिठा दिया। चाय प्लेट में लेकर उनके होठों से लगाई उन्होंने उसे हाथ से परे करते हुए कहा—"बहुत गरम है—तुम लोगों की सूरत देखने को तरस गई। कितना कहा था, इन मरी आंखों में जो नाम का धुंधला उजाला है उसे वैसे ही रहने दो—मेरा अपना काम तो चलता है…पर श्यामजी ने कब किसकी मानी है…होठों पर लगी भाप को महसूस करते हुए उन्होंने चाय सुड़क ली। फिर बोली—पहले कम बिगड़ी आंख में उतरा मोतियाबिंद निकलवा लें। उसके ठीक होने पर दूसरी आंख की साज-संभाल करेंगे और यूं दोनों आंखों में अंधेरा कर खाट में गिरा दिया।

—ठीक हो जाएंगी…फिर से सब दीखने लगेगा।

—क्या नहीं देखा इन फूटे दीदों से मैंने जो और देखूंगी…भरी जवानी में अपने सुहाग की अरथी देखी—बिन बच्चों के बाप का बिलखना देखा—भूख-प्यास देखी—गोने के पहले अपनी जाई—हतभागी बेटी का टूटा चूड़ा देखा—शुभ देखा तो अपने बड़े बेटे का चेहरा देखा… पर वह सब भी कब टिका—बेटा-बहू को रात-दिन किट किटाते देखा पोते का मुंह देखा तो बेटा-बहू बिलगा गए… तू ज़सवन्ती आज ही आई बेटा ?

—मांजी की बुझी आंखें गीली हो गई और बोल खांसी के दौर में बिलमा गए।

—अब नहीं बोलें मांजी—बीता बिसारें। मन भारी होने से आंखों पर जोर पड़ता है—इतना कह उसने पीठ सहला दी। खांसी थमी तो उन्हें होले से लिटा दिया—कप को साफ कर अपने लिए चाय ढाली और बस्सी में फैला कर जल्दी-जल्दी सुड़क लिया।

झाड़ू संभालकर जो भिड़ी तो मिनटों में सब साफ पोंचा लगाने के लिए वह झुकी थी कि शुसू—फिल्स···शु···कूकर ने विसल दी और वह चौंक गई। स्टोव की आंच मंद कर वह फिर सफाई में जुट गई। थोड़ी देर में दिप-दिप करते बर्तन और करीने से लगी चीज-वस्त के साथ कमरा मुंह से बोलने लगा। अब वह बाहरी कमरे में थी। उसने इधर-उधर जमी किताबों को साइज के मुताबिक जमाया—पं नेहरू की तस्वीर को झाड़ती टेबल के पास जो आई तो फोटोग्राफ्स की जमी हुई तह उसके पल्लू की झाड़ से बिखर गई। अब टेबल और उसके नीचे दसियों लड़कियों के फोटो बिखरे थे। उसने एक-एक कर सबको सहेजा। अपने फोटो पर नज़र पड़ते ही उसका हाथ पल-भर को ठिठक गया। उसने उसे उठाया। छोटे हासिए पर [3] का आंक चढ़ा हुआ था। फिर एक के बाद एक फोटो देखे तो उन पर क्रम से 16 तक के आंक पड़े थे। सब फोटो यथावत् रख कर उसने इंडेक्स कार्ड्स जमाना शुरू किया कि उसकी आंख सामने फैले कागज पर लिखे तीन के आंक पर जाकर फिर ठहर गयी—यह एक अन्तर्देशीय पत्र था। उसने लाख चाहा कि वह पत्र न पढ़े। उसके फोटो पर पड़ा तीन का आंक उसे ऊबडूब कर सब पढ़वा गया। लिखा था—

मेरे अच्छे कौशल,

खूब खुश हो ना? यार। मैं तो इधर दीवाना हो गया। भाई लोग लड़की-लड़की टेरते हैं। आधा इंच चौड़े 'मेट्री मोनियल' के कॉलम में साढ़े तीन लाइन में छपे एक अखबारी-विज्ञापन के जवाब में तीन सौ पैंसठ लड़कियां अपनी मांग उघाड़े, सिंदूर की चाहत में, घिघियाती हुई अपने पत्रों में बिलबिला रही हैं। बीसियों तरह-तरह के पोज बनाए अपनी टेबल पर धरी हैं—किसे चुनूं और किसे नहीं? बेचारियां! दोस्त, लगता

है अपने हिन्दुस्तान में कुंआरी कन्याओं की बाढ़ आ गई है—कहीं बांध टूटा तो मेरे-जैसे कुंआरेलाल तो तिनके की नांई बह जाएंगे। सोचा··· अपनी गिरह में तो इतने टके भी नहीं कि सबको जवाब भेज दें···देखने के लिए कहीं जाना तो दरकिनार, आठ तो अकेली दिल्ली से हैं—बाकी सारा देश पड़ा है—उत्तर-पश्चिम नाप लो। चालीस-पचास रुपये अखबार को भरे, उधार लेकर ही सही, पर दिलजोई का सामान खूब हो गया—आंखों की तफरी ऊपर से—अब जरा मुलाहिजा करें···तो पहले नम्बर तीन (हंस मत बुद्धू मैंने हरएक फोटो पर अपनी पसंद के क्रम से उम्मीदवार लड़कियों के इंडेक्स कार्ड तैयार किए हैं)। हां, तो पहले 'नम्बर तीन' को ही लीजिए—केप्शन सुझाएं? 'एक सोचती हुई लड़की' या एक गुमसुम औरत? फैसला करने में देर लगेगी।

'कुंआरा नौजवान लड़का सोचती हुई औरत को पसंद करेगा या मुस्कराती हुई लड़की को? समझने की बात है। ऊपर से चश्मा चढ़ाए हुए यूं बैठी है जैसे 'अण्डा पहले हुआ या मुर्गी?' के मसले पर गौर फरमा रही हों। पूरी दार्शनिक···चाहे क्रम तीसरा ही सही, फिर भी है अपनी पसंद के दायरे में। क्यों? काठी सुडौल और कसी हुई है। चेहरा-मोहरा भी ठीक-ठाक। गर्दन सुराहीदार—पर थोड़ा कद पस्ता। नाक छोटी, आंखें बड़ी, पर झुकी-झुकी। थोड़े होंठ और पतले होते। ठोढ़ी थोड़ी उभरी हुई और ऊपर से दांत जरा दबे होते तो क्या कहना···अगर इनकी नाक काट कर, सॉरी हटाकर, एक नम्बर की नाक से बदल दी जाए। फिर होंठ दो नम्बर से लेकर उसके नीचे ढोढ़ी सात नम्बर की लगा दें। होंठ नम्बर बारह से ले लें और दांतों के उभार को दस नम्बर से बदल हो जाए तो क्या कहने! यूं नम्बर एक और दो भी बावन तोला पांव-रत्ती सही नहीं, उनमें भी कमोबेश, फेरबदल की गुंजाइश तो है ही। एक नम्बर भी सो टंच-चौबीस केरेट नहीं, पर किताबी चेहरे और अलसाई नजरों के साथ फेमिली बैक ग्राउण्ड उनकी दूसरी कमियों को पूरा कर देता है।

"और बीसियों हैं, जिन्हें नम्बर पर नहीं लिया गया। उनमें से कुछ को तो ईश्वर ने शायद ठेके पर ही बनवाया है, और मालगाड़ी से धरती पर भेज दिया है। इसमें भला उनका क्या दोष···पच्चीस-तीस बरस की

कुंआरियां, बेचारियां···मां-बाप-भाई भी क्या करें—मुझे तो दया आती है। एक कुंआरी ने तो खुद आगे होकर ऐसा पत्र लिखा है कि रोना आता है। लिखती है—आपके पैरों की जूती बन कर रहूंगी···आपकी नीद जागूंगी।···क्या कहूं···कैसे कहूं? भाई आंखें दिखाते हैं। बप्पा आत्म-हत्या कर लेने की धमकी देते हैं। जीते-जी मरन है। मरती हूं तो कुल-कलंकी, जीती हूं, तो जंजाल! और भी बहुत लिखा है—आंसू भीगा। पर क्या करें? साल-छह महीने की बात होती तो और बात थी। पर यह तो जीवन-भर का साथ है···इस-उस को कैसे गले बांध ले?

'खैर! छोड़ो, अब बंद करता हूं यह कुंआरी-नामा। लेक्चरा शिप अपनी टेम्पररी थी, सो गर्मियों की छुट्टियों क बाद नहीं रही। अवकाश का वेतन खटाई में है···जुलाई में थिसिस 'सबमिट' करनी है। एक टाइप-मशीन किराए पर लाया हूं। अपनी 15-20 की मरियल स्पीट से देखो कितना खिचता है! बिजली-पानी के बिल अटके हैं। दूध वाले की उगाही तेज हो गई है। ऊपर से मांजी की आंखों का आपरेशन करवाया है—बिल्कुल टट् हैं। बन सके तो पखवाड़े-दस दिन में 500-600 रुपए का जुगाड़ करो। मांजी शादी की रट लगाए हैं। उन्हीं की तसल्ली के लिए 'मेटरीमोनियल' दिया था। वरना कड़के और बेकार लड़के की शादी का भला क्या अर्थ? हां, सोमवार को मेरे वाली पोस्ट के सलेक्शन के लिए इण्टरव्यू है। तैयारी खूब है, जाऊंगा। पर सुना है दिल्ली से कोई गोल्ड-मेडलिस्ट आ रही है—प्रोफेसर की सगी। दिल्ली का ही एक्सपर्ट भी आना है। खैर, जो भी होगा, देखेंगे। भैया-भाभी 'लीगल सेपरेशन' के कगार पर हैं। तुम उन्हें···"

कलेजे की धुकधुकी को हाथ से थाम कर दह पढ़े जा रही थी। बीच में ठण्डी सांस लेकर पेशानी पर चुहचुहा आए पसीने को आंचल में पोंछा, फिर अगली सांस में अधूरा खत पूरा पढ़ गई। कांपते हाथों से उसे वहीं जैसे का तैसा रख घूमी थी कि दीवार के कोने में लगे तिकोन पत्थर पर रखी 'उनकी' तस्वीर पर आंखें टंग गईं। आप हैं—बावन तोला पाव रत्ती सही—सधे नौजवान, आलू-सी नाक, कीकर-सी आंखें, गोभी-से सिर के नीचे शलजम-सी ढोड़ी, मटर-से गोल दांत और इमली की नाल से कान

यानी भरी-पूरी सब्जी की दुकान, पराई, बिन ब्याही बेटियों का नाप-जोख-भावतोल करने चले हैं!" उसने हिकारत में आंखें हटा लीं। एक पल तो सोचा कि चुपचाप इस घर से चल दे, पर चोर की तरह निकल भागना ठीक न समझ कर रुक गई। मांजी के कमरे से चावल लगने की गंध आई तो लपक कर वहां आई और सुर-सुराते स्टोप को चुप करा दिया। स्टोव बुझने के बाद उसे अपना तन-मन जलता-सा लगा और वह बाथरूम की ओर बढ़ गई।

भीगे बाल बिखराए खिड़की के बाहर देखती वह दरवाजे को पीठ किए खड़ी थी कि कदमों की आहट हुई। श्यामजी नाक-गाल पर पट्टियां चिपकाए, गले में पड़ी सफेद पट्टी पर, कच्चे प्लास्टर चढ़े हाथ को साधे मुस्कराते हुए सामने खड़े थे। उनका हुलिया देख कर वह धक्क् से रह गई, यह क्या हो गया, अभी तो···?'

'खास तो कुछ नहीं···एक स्कूटर वाला साइकिल को टक्कर मार गया···। माफ करें···भीड़ थी मरहम-पट्टी में देर हो गई।·· मां जी को दवा लेते ही चला आ रहा हूं।

—तो इस घर में मेरा फेरा नहीं फला···

—कैसी बातें करती हैं—आपने यह सब तकलीफ···कमरे की सुघड़ता को आंख में तौलते हुए उन्होंने कहा और फिर बौखलाहट में पूछा "आपने चाय···नाश्ता?"

—वह सब हो गया—आप हाथ धो लें। दाल-भात बना है—लाइए मांजी को दवा दे दें। इतना कहकर उसने उनके हाथ से दवा की शीशी थाम ली।

—दो दिन के लिए—वह भी इंटरव्यू के खातिर—आपका आना हुआ इधर···और जोत दिया मैंने आपको···

—मेरे लिए होटल···कमरा तो शायद···

वह मांजी के कमरे की तरफ बढ़ गई।

—हां,···वो मैं शाम तक ठीक कर दूंगा···उन्होंने अपने प्लास्टर चढ़े हाथ को निरीह होकर देखा—कोई बात नहीं—शाम तक दीदी नहीं तो जसवन्ती ही आ जाये शायद···आज ही उन्हें आना था।

—जसवन्ती···कौन···वह ठिठक कर बीच दरवाजे में खड़ी पूछ रही थी।

—दीदी की मुंह बोली बहन।

—मांजी ने मुझे जसवन्ती कहकर ही पुकारा और मैंने चुपचाप इस नाम को अपना लिया।

× × ×

अखबार-किताबों के पन्ने पलटते, मांजी की सेवा-टहल करते दोपहर ढली। सूरज ठंडा हुआ तो अलग-अलग किताबें उठाये, वे फिर छोटे कमरे में आ बैठे।

—आपका विषय···? श्यामजी ने चुप्पी चटखाई।

—वही जो आपका है···उसने बिना किताब से निगाह हटायें जवाब की टीप लगाई।

—स्पेशियल पेपर? फिर खामोशी को छिटकाया

—वैदिक-दर्शन···

—वाह—संयोग इसे कहते हैं···विज्ञापन में वैदिक-दर्शन में ही स्पेशियलाइजेशन
चाहा है···आपका सलेक्शन श्योर है···

—क्यों? मैं दिल्ली से आ रही हूं इसलिए।

सुनकर वह सकपका गए—फिर संभलकर बोले—

—अगर बुरा न मानो तो···आपका कैरियर···पेपर क्वालिफिकेशन?

—गोल्ड-मैडलिस्ट दिल्ली से—बी० ए० फर्स्ट पंजाब—फिर सेकण्ड···

—गुड वैरी गुड···

—औरों से पूछेंगे ही पूछेंगे—अपना कुछ नहीं बताएंगे? उसने आंखों से सवाल किया।

—क्यों नहीं···मैट्रीक्यूलेशन—अप-टू एम० ए०—थ्रो-आउट फर्स्ट क्लास। पी० एच० डी० कम्पलीटेड···एकसेशन का टीचिंग एक्सपीरियंस ··

—वाप रे।···उसने आंखों को चौड़ा करके सुना और चुभते बोल में कहा—फिर कैसे कहते हैं कि स्लेक्शन आपका नहीं मेरा होगा?

—गोल्डमैडल—वह भी दिल्ली से—फिलर ह्यूमन गर्ल कैन्डीडेट···

—आप दिल्ली की दुहाई क्यों देते हैं? फिर लड़कियों की तो बाढ़ आई हुई है। मैं तो सोचती हूं मेरा इंटरव्यू में जाना बेकार है।

—यह भला आप क्या कहती हैं। आप मुझसे या किसी और से क्या उन्नीस हैं? फिर इंटरव्यू आखिर इंटरव्यू है। सूरमा रह जाते हैं और एक दम फ्रेश लोग पार हो जाते हैं।

—जिस पेड़ नीचे बसेरा किया, जिन पत्तों से छाया पाई, उन्हें धूनी लगाने···मुझे सोचना पड़ेगा।' उसने कहा और किताब के पन्ने पलटने लगी। उन्होंने सुना और ठहठहा उठे। तभी मांजी को खांसी का दौरा पड़ा। वह तेज़ी से उनके कमरे की ओर बढ़े और बांये हाथ से उन्हें सहारा देने की कोशिश करने लगे। तभी पीछे से वह आ खड़ी हुई। बोली—छोड़िए एक हाथ से काम नहीं सधते। मांजी को दोनों हाथों से सहारा देकर उठंग किया और उनकी पीठ सहलाने लगी।

—दवा भी देनी है—उन्होंने फिर एक हाथ से शीशी का ढक्कन घुमाया तो पूरी शीशी ही घूम गई।

—कहा ना—एक हाथ से काम नही सधते—

अपनी बात दोहरा कर उसने शीशी का ढक्कन हटाया और चम्मच में दवा डाल मांजी को दे दी।

फिर पानी पिला पास रखे टावेल से उनका मुंह साफ कर दिया।

—जीती रहे मेरी जसवन्ती। सुधा नहीं आई? अरी। तुम दोनों मिलके उस पढ़े-लिखे उज्जड़ श्याम को समझाओ। तीन सो पैंसठ में से किसी एक तो पसंद कर ले। तीन सौ पैंसठ दिनों में एक दिन तो दीवाली होवे ही है। फिर कहो उससे कि अपनी सूरत को तो देखे। मां पर पड़े तो अदना और बाप पर हो तो 'कलुवा'। सब रूप भगवान ने सिरजे··· अरे गुन लच्छन परखो—मांजी फिर खांसी में डूब गईं। उसने फिर उनकी पीठ को सहला दिया।

—अच्छा मैं चलूं···देखूं कहीं कोई कमरा···

—ठहरिये···। उन्होंने बाहर कदम रखा ही था कि वह प्रकट हुई—क्या आप मुझे एक रात के लिए अपनी छत के नीचे सर छिपाने की आज्ञा नहीं देंगे ?

—आप कैसी बातें करती हैं···आपका घर है···आप ही ने कहा था इसलिए···फिर आपको यहां असुविधा···ऊपर से मांजी की टहल···खाना—फिर यहां रहकर आप इंटरव्यू की तैयारी भी नहीं कर सकेंगी···कुछ घंटे ही रह गए हैं आड़े ।—मुझे—कोई तैयारी नहीं करनी है···मैंने आपको कहा ना···इंटरव्यू के लिए भला कभी तैयारी काम आई है ? फिर दिल्ली का एक्सपर्ट यह बात अलग है कि आप मुझे यहां से···

—अरे—रे—क्यों कांटों में घसीटती हैं···तो फिर आप छोटे-कमरे में सोइए···वहां किताबें हैं। तैयारी भी हो जाएगी और मैं मांजी के कमरे में जमता हूं। उन्होंने नरम लहज़े में हुलसते हुए कहा ।

—ना·· ना आप बदस्तूर इधर ही जमे रहें—जुटके तैयारी करें···मैं उधर मांजी की तरफ ही रह लूंगी। अपने स्वर को सहज बनाते हुए उसने कहा ।

—क्यों शर्मिन्दा करती हैं···उस कमरे में पलंग नहीं है। फिर मां जी की खांसी—कितना खलल होगा—सोचिए—

—सोचती हुई सूरत है ही भगवान ने बनाई है। और भी सोचने को कहते हैं। फिर तो एकदम बोडम होकर सोच की मूरत नहीं बन जाऊंगी ?

—आप कैसी उखड़ी-उखड़ी बातें कर करती हैं।

वह जाने क्या सोचकर खिसिया गए। फिर बोले—आप तो उधर ही जमें ।

—मैं भला कब-कहां जम सकी···मां के गर्भ में भी सात ही महीने रही···और···छोड़ो मैं खाने की तैयारी में जुटती हूं—आप अब आजाद हैं। चाहे बाहर टहलें या घर में रहें—वह कहती हुई मांजी के कमरे की ओर मुड़ गई।

—पर देखिए भला आपको क्या पता कि कौन चीज़ कहां पड़ी है। किचन की···

—कोई किचन किसी औरत के लिए अजाना नहीं होता। आप मुझे

ःकदम ना-समझ मानते है ? मैं तो अच्छी खासी औरत हूं। उसने आंख उठाकर कहा।

—वो बात नहीं···मैं खुद खाना बनाता पर हाथ···आप बुरा न मानें तो किसी होटल से खाना ले आएं समय बचेगा···पढ़ सकेंगी कल के लिए···

—आखिर मैं ब्राह्मण की बेटी हूं···फिर कल किसने देखा है।

—तो मैं सब्जी ले आऊं—हां, पहले आपके लिए इधर की उधर खाट तो लगा दूं—

—मैं इधर की चीज़ उधर—इसकी चीज़ उसके, लगाना पसंद नहीं करती। फिर हरी सब्जी। मैं बरसात के दिनों में नहीं खाती। कीड़े होते हैं उसमें···

—आप तो···?

—बहुत सवाल करते हैं एक दिन के मेहमान पर भला यूं बातों का पहाड़ तोलते हैं—जिंदगी-भर के साथ की बात अलग है। उसके होंठ मुसकान की लय में तैर गए।

—तो क्या आपने वह···मैं आपके लिए खाट की तलाश करता हूं··· शायद उधर मकान-मालकिन की तरफ मिल जाए। इस बहाने वह मुंह चुरा कर वहां से टलने का अवसर पा गए।

पुरवैया को पायल में बूंदे के घुंघरू खनकाती बरखा की रात घिर आई। वह इधर टेबल पर बैठे, कल के लिए, अपने थिसिस के मुख्य मुद्दे टोह रहे थे और वह इधर खिड़की के शीशों पर रेंगते पानी के धारों में अपने छोटे-भाई-बहनों की सूरत जोंह रही थी—घर के बारे में सोच रही थी। पापाजी को कितनी बार कहा था कि विवाह-विज्ञापन देख वह उसके फोटो इधर-उधर न बखेरें—पर वह भला कब मानने वाले हैं— लो। अब बिगड़वाई अपनी बेटी की गत। पहले तो अखबार वालों को चिट्ठी भेजी— फिर 'लड़के'···के साइक्लोस्टाइल-गश्ती-पत्र के जवाब में घों-घों से बाहर निकलने और एडवांस बनने के लिए ललकारते हुए इन महाशय के दरवाज़े तक धकेल दिया।—जब उदयपुर जा ही रही तो गुड-जेस्चर मारने में क्या हर्ज है ? तुम भी उनका घर-बार देख लोगी और वे भी तुम्हें···सौगंध है

तुम्हें मेरे सर की जो वहां न जाओ···समझती हूं मेरी बढ़ती-ढलती उम्र को देखकर पापाजी बहुत परेशान हैं—इधर यह साहब लड़कियों के चेहरे-मोहरे जोड़कर खिलौने घड़ रहे हैं। परायी बेटियों के अंगों को गणित के अंकों की तरह घटा-बढ़ा रहे हैं···उन्हें दिलजोई का सामान कहकर उन पर हंस रहे···उन पर दया कर रहे···उन्हें ठेके में बनी जिस समझ रहे हैं···आपको सिर जा है खास अल्लाह-मियां ने फुर्सत में। लड़कियों के ढेर सारे फोटो पाकर कहते हैं लड़कियों की बाढ़ आ गई। चौकड़ी भूल गये···बीमार मां की बात नही मानते···अपने आपको समझते क्या हैं? कामदेव-अवतारी—सोचते-सोचते उसका सर चकराने लगा। वह सर पकड़कर खाट पर बैठ गई। तभी बुलाहट हुई—

सुनिए—। किसी किताब की दरकार हो तो मांग लीजियेगा। बरखा में भीगा स्वर था·· पर उसे तीता और कसैला लगा। उसने बिना कोई जवाब दिए बिजली गुल कर दी···और मांजी के सिरहाने लगा जीरो बल्ब के उदास उजाले में उदास होकर खाट में ढल गई।

हरियाली को निहाल करते मौसम का उजास नहाया धुंधलका घरों-चौबारों में बिछा था कि उसने छोटे कमरे की कुंडी खटखटा कर उन्हें जगा दिया। मांजी की खांसी की खरखराहट से वह बहुत पहले जाग बैठी थी। मांजी को संभाल कर उसने टेरा—उठ। जाग मुसाफिर भोर भयी। गुन-गुनाते बोल को उन्होंने सकारा—

—नमस्ते जी···

—नमस्ते ! शुभ हो···

—आशीर्वाद दे रही है—वह भी छिपकर।

—बड़ी हूं, लड़की नहीं, औरत हूं इसलिए—सामने इसीलिए नहीं होती कि दिन में किसी को यह कहकर नहीं पछताना पड़े कि आज सुबह जागते ही किसका मुंह देखा···उसके बोल में रुखापन आ गया था।

—मीठा कब बोलेंगी···न्याय कब तोलेंगो···महमान तो आज चले जाएंगे।

—तो क्या। बाढ़ आयी है—बांध टूटा नहीं कि महमान ही महमान···

—क्यों काटती हैं···कड़ुआ बोलती है···दोस्तों की बातें हैं···महज सखरापन···बात का सिरा उधर सरकाते हुए उन्होंने उसे सहज करना चाहा।

अब आप कब तक लिहाफ में लिपटे रहेंगे···साढ़े नौ बजे यूनिवर्सिटी पहुंचना है···दूध आ गया था···कहें बैड-टी हाजिर करें···उसने अब हंसते हुए बात मारी।

—क्यों मखौल करती हैं। मैं एक बेकार—मामूली आदमी—

—नाहिये-धोइये और निचोड़िये—हम तो तैयार होकर खड़े हैं आपकी अगवानी में। उसने चश्मा हटा दिया था और भीगी-भीगी नरम धूप में ताजा और खिली हुई खड़ी थी। श्याम जी उठे, कमरे में जाकर मांजी के पैर छुए और जुट गये तैयारी में। ··लौटे तो उजले कुर्ते-कमीज में फूले-फूले दीख रहे थे।

—देखिये मैं एक दिन में कितना मोटा हो गया। उन्होंने खिलते हुए कहा—

—पहले अद्वैत थे अब द्वैत हो गए हैं?

—आपके इस कथन को जिज्ञासा मानूं या तथ्य-कथन।

—दर्शन का विद्यार्थी तो जिज्ञासु होता है। दर्शन में भला तथ्य कहां? भारी-भरकम शब्दों के पाले से उनका उछाह ठंडा हो गया और वह चुपचाप अपने पढ़ने की टेबल पर जाकर बैठ गये—एकदम जड़। उसे एक हाथ से झूलते बालों को सहेजते और दूसरे हाथ में चाय की ट्रे थमी देखकर भी वह बेहिल रहे—एकदम गुमसुम। लीजिए! चाय···उन्होंने सुना। आंख उठाई तो पाया दो प्याले चाय के साथ एक छोटी प्लेट में ग्लूकोज-बिस्किट थे।

—थैंक्यू—मेहमान मैं हूं या आप···ये बिस्किट कहां से आये? उन्होंने जरा चौंककर कहा।

—आप पहले सवाल पर गौर करें बस—और प्याला थामकर हौले-हौले सिप करती रही ··बिस्किट लें···हां, चेटक तो शाम को ही निकलती है न? यहां से लोकल ट्रेन अजमेर के लिए कब रवाना होती है?

—यही कोई सवेरे नौ बजे के आसपास···पर क्यों?

—वैसे ही···सोचने वाली सूरत हजार चीज़ें सोचती है—यहां से अजमेर-जयपुर के लिए बसें भी तो निकलती हैं ?

—निकलने को तो जानें भी निकलती हैं···पर वक्त पर—आप सुबह-ही-सुबह यह क्या भीम पलासी गाने लगीं ?

—गाना। हम कुंआरियों के नसीबों में कहां? वह तो चहेती सुहागिनों का लेख है···हमारे भाग में तो रोना और अबस खोना बदा है। उसने हवाओं में उदासी उकेरते हुए कहा।

—तो आप नियतिवादी हैं? उन्होंने उसे सहज बनाने के लिए फिर सुर्रा छोड़ा।

—वादी-विवादी कुछ नहीं···नियति को मारी कहिए···आप उलझा देते हैं, बातों में। बढ़ती बात को समेटते हुए उसने कहा—साढ़े आठ हो रहे हैं—अपने सर्टिफिकेट्स और दूसरे पेपर्स सहजिए। मां जी जाग गईं···मैं उन्हें कुल्ला-मंजन करवाती हूं। इतना कहकर वह ट्रे लेकर उठ खड़ी हुई।

—क्यों आपको नहीं जाना इंटरव्यू में? दिल्ली से किस लिए चली थीं ?

—मैंने कल कहा तो था···पर मैं अकेली जाऊंगी। आप मेरे लिए अलग से आटो-रिक्शा यहां भेज दें···चलूं तैयारी करती हूं। इतना बोल वह मुड़ी थी कि उन्होंने रोका—

—यह सब क्या है? आप क्या सोचती हैं? एक मकान में रह लेंगी पर एक रिक्शे में नहीं बैठेंगी? वह खीज उठे।

—यह बात नहीं···मेरे साथ का शकुन कभी नहीं फलता—जनमते ही मां को खा गई···उसकी बात पूरी हो उससे पहले उन्होंने जोड़ा—

—यहां पैदा होते ही बाप को चट कर गए···माइनस-माइनस प्लस, चलो हुई छुट्टी। वह हंस दिए फिर बोले—

—तैयार हो जाइए—मैं लाया रिक्शा।

—गंभीर क्षणों को हंसी की हवा न दीजिए···मैं आपके साथ इंटरव्यू में नहीं जा सकूंगी। इतना बोल वह उदास हो गई और मां जी के कमरे की ओर बढ़ गई।

—तो मैं यह समझूं कि मेरे साथ से आपके शकुन बिगड़ेंगे ?

—ऐसा क्यों समझेंगे ? समझ लीजिए मुझे नौकरी की खास जरूरत है नहीं। उसने रुखाई से कहा। लौट कर ट्रे को नीचे रखा और खाली कुर्सी को खींचकर टाइप मशीन के सामने बैठ गई। रोलर घुमाकर तुरंत काग़ज चढ़ाया और मशीन को धड़धड़ाते हुए फर्राटे से टाइप किया हुआ काग़ज निकाल कर सहेजा और आनन-कानन में मांजी की ओर होली। कमरे के भीतर पहुंचकर उसने सुना—

—आप तैयार रहें···अपनी पहचान के रिक्शे वाले को भेजता हूं··· मैं उधर से ही निकल जाऊंगा। कोई उत्तर न पाकर वह कमरे में आए—मां जी के चरण छूए और तेजी से बिन बोले बाहर हो गए।

सूटकेस सामने रखकर वह अपने कपड़े-काग़ज सहेज रही थी चुप—"रिक्शा आया समझिए—बीस—पच्चीस मिनिट में"—उसके हवा में लहराते फिर बोल आए।

अब आस पास बिखरी-चीज़-वस्त को करीने से लगा उसने मांजी को दूध पिलाया और दीवार पर टंगे शीशे के सामने जाकर खड़ी हो गई। अपने आपसे बतियाते हुए कहा—आधा सफर तय हो गया—आधा आगे पड़ा है। लट संवारी और मां जी के खाट के पास आकर ठिठक गई। तभी एक घरघराहट बाहर दरवाजे के पास आकर थम गई। उसने मां जी के चरण छुए और बुदबुदाई—"सात माह आपने गर्भ में रखा तुमने तो मुझे···पर मैं सात घंटे भी तुम्हारी सेवा नहीं कर पाई।" फिर ऊंची आवाज़ मैं कहा—"मां जी मैं चलती हूं; सुधा से मिलना नहीं हुआ।" उसके बोल रुआंसे हो गए।

—"क्यों बेटी···सुधा आती तो चली जाती···तनि इधर तो हो··· बैठ मेरे पास।" टूटे स्वर में मांजी बोलीं और उसके सर पर हाथ रखने के लिए उसे टोहने लगीं। अनूपा उनकी खाट से लग कर नीचे बैठ गई और उनका हाथ थामकर अपने सर पर रख लिया। थोड़ी देर गुम-सुम रही फिर चरण छूकर बाहर हो गई।

बाहर का कमरा खुला था। दरवाज़े के आगे पल-भर के लिए ठिठकी फिर आगे बढ़ी और टेबल पर रखे शीशे के नीचे अपना टाइप किया काग़ज़

फैला कर झटके से दरवाज़ा बंद किया और बाहर खड़े रिक्शे मे धंस गई। उसके मुंह से निकाला 'रेलवे स्टेशन ।'

टेबल पर फैले काग़ज़ पर उभरी इबारत शीशे से साफ़ झलक रही थी—

—पहचान ही चुके हैं कि मैं आपके पसंद वे सोलह-रंगी दायरे में खड़ी नम्बर 'तीन' हूं। बड़ा उपकार होगा यदि आप मुझे अपनी पसंद से ख़ारिज कर सकें। एक सोचती हुई फ़िलासफ़र किस्म की औरत एक सजीले-रौबीले चुस्त-चौबंद कुंआरे नौजवान के सामने भला क्या गुज़र ? मैं चाहती हूं कि अपना फोटो और अपने पापा जी का ख़त आप की टेबल से उठा लूं; पर यह चोरी होगी। मुझे चोर भी समझा जाएगा। इसलिए मेरा अनुरोध है कि आप खुद ही इन्हें मेरे पते पर भिजवा दें।

—नम्बर तीन

एक और सीता

अंधेरे की आंख-सी टपरी में काजल की भांत ढलका ढिबरी का टिमटिम उजास जैसे विदा के आंसुओं से धुली उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में अंजी काजल की रेखा। सुहाग के लाल जोड़े में बसी मिट्टी-पुते बांस की दीवार से सटी, वह अधमंदी आंखों से अपना भाग जोह रही थी। तभी देहरी की रोक परे कर एक डील की छांह उभरी। कंपा देने वाले झोंके से जीव सिसककर रह गई। वह अपने में और सिमट गई।

जोत के आगे अब एक भुतैली छांह आकर ठहर गई। जोत एक बार फिर कांपी। पर दूसरे ही पल छांह के कांधे से झटककर गिरने वाले गाढ़े के पल्लू से अंधेरे का अजगर छूटा और सब लील गया। नाग-पाश बड़ा था। उसमें जकड़ा रमिया बाहर पड़ा था। उसके हाथ-पैर बंधे हुए थे। ऊपर खाट औंधी धरी थी और खाट पर भैंसे का गुनता। रमिया कल ही घोड़ी चढ़ा था और पास के गांव से जनका डोम की बिटिया सीती को आज ब्याह कर लाया था, जिसे अब अंधेरे के अजगर ने केंचुल बनाकर पूरी तरह पहन लिया था।

भिनसारे हल्दी-उबटन की बास में नहाई मेंहदी-रंग पुरवाई घुंघरू झनकाती उसके पैरों पर झुकी तो उसकी पलकें उघड़ीं—टेकरी के ऊपर तने आकाश का रंग उसकी पुतलियों में रमा था। उसे रंग की याद आयी। कल रात ठाकुर ने मान-मरजाद तोड़ उसके साथ खूब पी-पिलायी थी। रमिया को लगा था, उसकी जात ऊंची हो गई। पीता-पीता वह वहीं लुढ़क गया था। फिर पता नहीं खलिहान के खुले से उठकर वह टपरी के चंदोवे तले कैसे आ गया? देह तोड़कर उठा। जम्हाई लेते मुंह खोला तो खट्टी-खट्टी बासी घूंट गले उतर गई। हाथ जो नीचे डाले तो दो झुके कंधों से छू गए। उसकी ब्याहता चरण-रज ले अपनी मांग में सुहाग पूर

रही थी। वह अचकचाकर पीछे हट गया।

पूरी पूनो उतरे बाद, आज रमिया की रात थी। उसमें ठाकुर का वचन खिला था। ठाकुर ठाकुर हैं—बात के धनी। जो कहा वही किया। उसका जी हुमकने लगा—भीतर ही भीतर। 'अपने' का आना-जाना। उधर उसने ठिठोली में आंख और मूंद ली—यह मानकर कि कांधे पर झूलते पल्लू से ढिबरी का बढ़ना रोज-रोज क्यों देखूं।

सीती को आज कुछ बदला-बदला लगा। देह पर देह का जमाव थोड़ा-थोड़ा और हलका जानकर उसने पलकें उघाड़ीं। अंधेरा पर तोलकर खड़ा था—लो आज मैं ही लाज तोड़ूं—उजियारे में बतियाते हो···अंधेरे में बोल भूल जाते हैं? रमिया हंसने को हुआ कि उसके गले में खिली बेल के पाल झूल गए। यकायक ही उसकी आंख झरने लगी—इतनी कि सीती के पलक भीग गए।

"काहे···काहे···" आंसू का रेला तोड़ अपने को परे करते हुए वह बोला—"आज हम हैं।" सुनकर उसकी समझ डोल गई। फुंकारती हुई बोली—"तो आज तक कौन रहा हमारे आंचल में?"

"ठाकुर···मालिक···" और वह फूट-फूटकर रोने लगा, "अब जो तू चाहे दोस धर। यह पाप तो माथे चढ़ा ही लिया···पाखंड ओढ़ा और तुझे नरक में झोंक दिया।"

वह कांप रही थी। अंधेरे में जाने कैसे उसका हाथ सिराहने धरे हंसिए पर जा पड़ा। छवान से रिसती चांदनी की मैली धार हंसिए की धार से आ मिली। रमिया उसके पैरों में सीस धरे कह रहा था—"नाड़ कलम कर दें···हम पापी तेरे···जनम-जनम के वैरी···पर ठाकुर भी रावण से दो अंगुली ऊपर···बस मेरी सुन भर लें फिर सिर हाजर।"

बीती सुनकर सीती बिलखती हुई सिसकने लगी। बोली—"खोटी न होकर भी हम खोटी···देह का रस जार ले गया। पर आतमा का अमरित तो तेरा···जिसके साथ भांवर पड़ी···हम तेरी सुहागन।" उसने बढ़कर उसका चेहरा अंजुरी में भर लिया।

"ठाकुर हैं?···जुहार···आज उजास में ही दरस-परस पा लूं··· निहाल हुई···धन भाग।" टूटे-टूटे बोल और ठहर-ठहरकर फूटने वाली

बानी। ठाकुर को लगा उनकी राह रुंध गई। कड़ककर गरजे—"क्यों, रमिया ने औंधा-सीधा जतला दिया कुछ?"

"उसकी मजाल···वह चाकर, आप ठाकर।" वह उठी और उनके गलबहियां डाल बिछने लगी। वे संभले, फिर बोले—"पीत जो करवाए कम···लगन जो लगाए थोड़ा, अब जो तू चाहे मान। निगोड़ी काया ही तेरी ऐसी भा गई कि जी छोड बैठे। महीनों हिया उचाट किए डोले। लगा पूरब जनम की पहचान है हमारी। और जुगत न बैठी तो तेरा हरन ठाना···हम परथीराज, तुम संजोगता···सब तय और तैयार था कि··· तेरे हाथ में हँसिया है···हां, जंगल है ··बेर-कुबेर पास लेकर ही सोया कर।" एक सांस में कह गए ठाकुर।

"रुकें ना। कहें, ठाकुर अपने बीते जनम की कथा।"

"रमिया की जात की सुध पड़ी तो और बात बन आई। और हम-तुम एक। अगले जनम रमिया का भी फटा दूर···तब हिरदे को कल पड़ेगी ···ठीक?"

"धरम कथा पूरी तो करें ठाकुर···हम संजोगता···तुम···"

"हमारा जी लाख तरस गया। तुम्हें रानी बनाते, गढ़ी में बिठाते पर बैरी जात का रोड़ा। जात-जगत का जंजाल काटने को रमिया का मुंह जोहना पड़ा। देह तेरी डोम चमार की सही···आत्मा तो छत्री की है। फिर लेता है चमार तो, ले देह।

"तुम कहते थे ठाकुर, मुझे गढ़िया तले डाल रखेंगे और भोग-भोग कर मार देंगे···तेरी जान के खातर हमने यह पाप सिरजा?"

"हां तो···झूठ कहा?"

"ना···ठाकुर अपने को पूरब जनम के परथीराज और संजोगता बना रहे थे।"

"रहने दे! ढोंगी हैं पूरे···सफा कहा था···बात मान रमिया तू··· ब्याह ला उसे···दोनों के बीच रहेगी।"

"फिर?"

"फिर क्या? हमने भी सरत बदी। सीती को औलाद हमारी पड़ेगी ···तो झट बोले, चमरिया की कोख ठाकुर का बीज फलेगा भी नहीं। तू

चमार ही उगाना जा···मुझे कुछ न पड़ी।" चुप रहकर फिर बोला—"देखते हैं, बचन पूरा करते हैं ठाकुर ?"

"क्यों नहीं · तुम्हारे ठाकुर ज्ञानी हैं। तुमने उनके मन का साधा तो वो भी पीछे नहीं। जानते हो मेरे नहाने के बाद दिन टालकर ही आते हैं—जब धारन का औसर टल जाए।"

रमिया के भेंटे के बाद ठाकुर सीती से जिस दिन मिले उन्हें लगा जैसे सोता ही सूख गया। सर ही मर नई। यूं ओढ़ा-बिछाया, सभी कुछ किया, पर जब हटे तो लगा उनके मुंह में चुसी हुई गुठली ठुंसी रही। उन्होंने बाहर आकर थूक दिया।

अगली बार वे रुके रहे। रमिया को हाली-मवाली का काम सौंप दूसरे गांव भेज दिया। इस चोकस के साथ कि "जब तक काम न निपटे लौटना नहीं वरना रोटियों से लाचार कर गांव-बाहर कर देंगे।"

आज ठाकुर लंबे बुलावे के बाद टपरी में आए तो फिर सोते-बैठते उन्हें वही लगा कि ठिठुरे काठ से लगे रहे हैं। झुंझलाकर बोले—"सीतापन ओढ़ा जा रहा है। सती बन रही है···जैसे दम हीन हो···खाने को मिलता ?"

"जो है, मिलता है मालिक···न हो अपने हाथ उभार-उठाकर ले लें।"

"चमरिया बतियाने लगी है। चोंच चलाती है हमसे·· भुस भर देंगे।" उन्होंने कोप धरा और पैर पटकते हुए बाहर हो गए।

ठाकुर का खेत हांकते-हांकते रमिया का ध्यान बंटा। टपरी की तरफ कान धरा तो लगा कांसे का थाल झनझना रहा है। वहां पहुंचा तो ठिठक गया। टपरी के बाहर काकी, मौसी, जीजी, भौजी—गांव की सब खड़ी थीं। पल बीते कि दाई ने आकर कहा—"बेटा दिया है ठाकुरजी ने।" वह खिलने को हुआ कि रह गया। गले में बोल रुंध गए—"बेटा दिया है ठाकुर—नहीं···नहीं···"

सीती की खाट से लगकर झुका बेटे के नन्हे मुखड़े को आंख की अंजुरी में भर पूछा—"किस पर पड़ा है रे ?"

"तुम ये ही पूछोगे, जानती थी।" सीती की आंख डबडबा आईं। लगा कि रमिया जानता है, तब फिर क्यों इस तरह बेइज्जत करता है। न

जानता और न चाहता तो दोषी होती। धीरे से बोली—"तुम्हें अछूता कुछ दे न पाई···मैं करती भी क्या···पर जब से उसकी जात जानी है उससे बोला ही चटवाया है। सुहागन का मन उसे पहली रात अनजाने भले ही मिला हो···आगे तो···अगन-मां की साखी जिसके साथ फेरे लिए, उसी को मन से जाना है···"

"नहीं रे ! यू जी हलका न कर। वैसे ही पूछ लिया।"

"अच्छा हुआ···ठाकुर की बात फली···चमरिया की कोख चमार का ही बीज फूटा। आरसी धर सूरत न मिला लें बाप-बेटे ?"

वह टूटकर घुटनों के बल बैठ गया और उसके आंचल में मुंह ढांप रुआंसा ही बोला—"सीती·· न···न···सीता···कलजुग है···भगवान ने राम से रमिया बना दिया···धनुष-बान छीनकर पाप की मजूरी लिख दी···वरना अभी भेद देते उस ठाकुर···नहीं, उस रावन का सिर···"

ठाकुर, अब इस गैल न पड़ो। जुग बीत गया। अब देह थक गई। बचवा भी बढ़ गया। उसे बारहवां लगा कि···उसका बाप बैठे-बैठे लुढ़क गया···रांड हो गई···सहाग लूटा, ठाकुर, अब रंडापा न लूटो···उसके मरने के बाद तो उसका रहने दो···"

"ओह, यूं ठहरी, उस चमार के मरने से सुहाग छिन गया ! हम जो सामने भरे-पूरे खड़े हैं सो तुस। देखरी ! तू जो ये सीतापन ओढ़ रही है, उसने हमें कितना जल्दी बुढ़ा दिया।

ठाकुर ने उसका हाथ पकड़ लिया। हाथ झटकते हुए वह बोली—"ठाकुर, मानो···अब उमंग···हुमक बीत गई···रीते कलस कुछ न मिलेगा···उनको पार लगे महीना न हुआ। बचवा को समझ पड़ा तो लाज न बचेगी।"

"हम कहें, उस रंडवे के न रहते रांड हो गई और हम···"

"आप मालिक···पर धरम के धनी तो वो···पति···अगन-मां की साखी···" बात पूरी न हुई कि उसका मुंह झूल गया। जोर का हत्थड़ पटककर वे मुड़ गए। पीछे से बोल आए—"अमा को आएंगे। सारा सोग उतारकर बैठियो। नहीं बचबा की सूरत तरस जाएगी···"

"रुकें, ठाकुर...उनके रहते मेरी लाज के धनी वे ही थे। अपने रहते अपनी बसत उन्होंने तुम्हें दी। उनके बीतने पर अपनी लाज की पहरू मैं हूं। सुहाग उनका था। उन्होंने लुटवाया। दुहाग मेरा है, मैं तुम्हें न दूंगी। प्राण देकर और लेकर भी उसे सहेजूंगी।"

"बंद कर...उधेड़ दूंगा...तेरी लाज का जहाज हज़ार बार लूटा है...डोम की छुकरिया और सीता का स्वांग वह भी एक जुग के बाद..." ठाकुर ने आगे बढ़ते हुए कहा।

"आगे न बढ़, ठाकुर। मेरे हाथ में गंडासा है...और कोई नहीं तो लो यह लखन रेखा मैं ही खींच देती हूं।" यह कहकर उसने गंडासे की नोक से धरती पर एक गहरी रेख आंक दी।

□□